तृतीय खण्ड
ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड तीन का परिचय

शाबर भाष्य में ब्राह्मणग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों का विवरण मिलता है। जैसे -हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशयः, विधि, प्रक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारणकल्पना, उपमान आदि इन विषयों में चार प्रधान हैं विधि, अर्थवाद, उपनिषद् एवं आख्यान। विधिभाग के अन्तर्गत कर्मकाण्ड विषयक विधानों का वर्णन आता है या इसमें यज्ञ करने के प्रयोग सम्बन्धी नियम भी निरूपित हैं। विधि का अर्थ है यज्ञ तथा उसके अंगों एव उपांगो का निरूपण करना। यज्ञ के किसी विशेष भाग में किस प्रकार अग्नि प्रज्ज्वलित की जाय, वेदी का आकार क्या और कैसे हो, दर्शपौर्णमासादि यज्ञ करने वाले व्यक्ति का आचरण कैसा हो आदि। होता, उद्गाता तथा ब्रह्मा किस दिशा में किस प्रकार मुख करके बैठे और किस हाथ में कुशधारण करें आदि सारी बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलती हैं। ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण नामक इस खण्ड के अध्ययन में आपका स्वागत है। पूर्व के खण्ड की तरह इस खण्ड का भी विषय व्यापक और गम्भीर है। ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण के शुन:शेप आख्यान और सृष्टि की रचना तथा उसके महत्व का प्रतिपादन आपको इसमें पढ़ने को मिलेगा। प्रथम इकाई में शुन:शेप आख्यान के महत्व का उल्लेख है। दूसरी इकाई में मनुमत्स्य आख्यान के आधार पर सृष्टि की प्रक्रिया का क्या रहस्य है, इसतथ्य को आपके समक्ष अध्ययन हेतु प्रस्तुत किया गया है। वांड्.मनस् संवाद के आधार पर आप इसमें बताए गए तथ्यों का अध्ययन करेंगे और यह जानेंगे की वाणी तथा मन के बीच किस प्रकार संवाद होने पर कौन विजय प्राप्त किया था। इससूक्त में मन और वाणी के विस्तृत संवाद आपको प्राप्त होंगे। अगली इकाई बहुत ही दुरूह विषय का प्रतिपादन करती है, जिसमें अग्निहोत्र विद्या का निरूपण किया गया है। इस प्रकार इस तीसरे खण्ड में आप वेद के ब्राह्मण ग्रन्थों में चित्रित कठिनतम ज्ञान को आसानी से प्राप्त कर सकेंगे। इन्हीं विषयों का अध्ययन करने हेतु विभिन्न पुस्तकों का आश्रयग्रहण करना पड़ता है। किन्तु यहाँ पर कुछ ही शीर्षकों में बहुत व्यापक विषयों का समावेश करते हुए विद्वान लेखकों ने सुधी पाठकों की सुविधा का ध्यान रखते हुए विवेचन प्रस्तुत किया है। आशा है आपको अवश्य लाभ मिलेगा। इसके अध्ययन के पश्चात् आप इन तथ्यों की व्याख्या करने में भी सक्षम हो जाएंगे।

इकाई 1 ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय 33- शुनःशेप आख्यान का महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय

1.2.1 आख्यान, उपाख्यान और कथा

1.2.2 ऐतरेय ब्राह्मण का परिचय

1.2.3 ऐतरेय ब्राह्मण का प्रतिपाद्य

1.3 शुनःशेप आख्यान

1.3.1 शुनःशेप आख्यान का परिचय

1.3.2 शुनःशेप आख्यान की कथा

1.4 शुनःशेप आख्यान का महत्त्व

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.9 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

1. वैदिक साहित्य, ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ के महत्त्व को अध्ययन सकेंगे।
2. एतरेय ब्राह्मण एवं उनके भाष्यकारों की जानकारी प्राप्त सकेंगे।
3. आख्यान उपाख्यान एवं कथा के तात्पर्य को जान सकेंगे।
4. शुनः शेप आख्यान में वर्णित कथा जान पायेंगे।
5. मानव जीवन की प्रबल एषणाओं तथा उसके प्रभाव को जान सकेंगे।
6. वैदिक आचार-विधान के सन्देश को ग्रहण कर पायेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परम्परा श्रुतिमूलक हैं। वेदार्थ ज्ञान मंत्रों तथा आख्यानों के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती रहीं हैं। मंत्रों में निहित ज्ञान का अवबोध एवं उसका संरचरण गूढ़ है

किन्तु आख्यान मानव हृदय में सरस रूप में अपने प्रभाव छोड़ते है वेद के गम्भीर एवं गूढ़ ज्ञान का संचरण आसानी से आख्यान के माध्यम से युगों-युगों से प्रवाहमान होता रहा है।

अभी तक हम जान चुँके हैं कि वैदिक साहित्य का विभाजन चार भागों में किया जा सकता है। यथा- (1) संहिता (2) ब्राह्मण ग्रन्थ (3) आरण्यक ग्रन्थ (4) उपनिषद्। यदि हम मन्त्रों के संघट्ट को संहिता, संहिता के अन्तिम भाग को ब्राह्मण तथा ब्राह्मण के अन्तिम भाग को आरण्यक एवं आरण्यक के अन्तिम भाग को उपनिषद् कहे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। उपनिषदों के लिये वेदान्त नामकरण सर्वविदित ही है।

वेद चार है **:- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।**

प्रत्येक वेद के विभिन्न ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं। संहिता में मंत्रों का मूल रूप रहता है, जो देवस्तुति के रूप विभिन्न यज्ञों और अनुष्ठानों के समय पढ़ा जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वह भाग है जो मंत्रों के विधि भाग की व्याख्या करता है। आरण्यक ग्रन्थों में वह अंश है, जिसमें विधियों पर वह रहस्य चिंतन जिसे वानप्रस्थ की अवस्था में मनुष्य को वन में करना चाहिये। उपनिषदों में अध्यात्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्त हैं। इस इकाई में हम ऐतरेय ब्राह्मण'के प्रतिपाद्य 33वें अध्याय में वर्णित शुनःशेप आख्ययन की व्याख्या एवं महत्त्व को जान सकेंगे।

सुप्रसिद्ध वेदज्ञ विद्वान् मैक्समूलर ने अपने ग्रन्थ 'India what can It teach' में अपने अनवरत वेदाध्ययन के निचोड. को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है - ''**मानव जाति का अध्ययन करने के लिये संसार का कोई भी साहित्य वैदिक साहित्य की बराबरी नहीं कर सकता।**''

1.2 ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय

शाबर भाष्य में ब्राह्मणग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों का विवरण प्रस्तुत किया गया, जो इस प्रकार है-

"हेतुर्निवचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।
परिक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना।
उपमानं दशैतेतो विधयो ब्राह्मणस्य तु।।" 2/1/8

1. हेतुः, 2. निर्वचनम्, 3. निन्दा, 4. प्रशंसा, 5. संशयः, 6. विधिः, 7. प्रक्रिया, 8. पुराकल्पः, 9. व्यवधारणकल्पना, 10. उपमानम्

दशविषयों में चार प्रधान है विधि, अर्थवाद, उपनिषद् एवं आख्यान। विधिभाग के अन्तर्गत कर्मकाण्ड विषयक विधानों का वग्रन है या इसमें यज्ञ करने के प्रयोग सम्बन्धी नियम निरूपित हैं। विधि का अर्थ है यज्ञ तथा उसके अंगों एव उपांगो का निरूपण यज्ञ के किसी विशेष भाग में किस प्रकार अग्नि प्रज्ज्वलित की जाय, वेदी का आकार क्या और कैसे हो, दर्शपौर्णमासादि यज्ञ करने वाले व्यक्ति का आचरण कैसा होता, उदगाता तथा ब्रह्म किस दिशा में किस प्रकार मुख करके बैठे और किस हाथ में कुशधारण करें आदि सारी बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित है। विषय की दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थों के चार भाग है, जिनके नाम है- विधिभाग, अर्थवादभाग, उपनिषद् भाग और आख्यान भाग।

विधिभाग में मुख्यतः कर्मकाण्ड सम्बन्धी विधानों का वर्णन है। वेदमन्त्रों की अर्थमीमांसा और वैदिक शब्दों की निष्पत्ति भी इसी भाग में निरूपित है।

दूसरे अर्थवाद भाग में प्ररोचनात्मक विषय वर्णित है। यज्ञविधियों को अर्थवाद का ज्ञान आवश्यक है। अर्थवाद उन निर्देश-वाक्यों को कहते हैं, जिनमें यज्ञ-विधानों का उल्लेख होता है। उदाहरण के लिये जैसे- अमुक यज्ञ करने से अमुक फल की प्राप्ति होती है; अमुक यज्ञ करने से अमुक विधियों की आवश्यकता है। इस प्रकार की आज्ञायें अर्थवाद भाग में वर्णित है। विधि का अनुकरण और निषेध की निन्दा करने वाले वाक्यों को अर्थवाद कहा गया है। यथा-

''विहितकार्ये प्ररोचना निषिद्धकार्ये निर्त्तना अर्थवादः।"

मीमांसाकार महर्षि जैमिनी ने अर्थवाद के तीन भेद किये है- गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थानुवाद। भूतार्थानुवाद को उन्होंने सात भागों में विभाजित किया है-

(1) स्वुत्यर्थवाद (2) फलार्थवाद (3) सिद्धार्थवाद (4) निरर्थवाद (5) परकृति (6) पुराकल्प (7) मन्त्र।

ब्राह्मण-ग्रन्थों के तीसरे उपनिषद् भाग में ब्रह्मतत्त्व के सम्बन्ध में विचार किया गया है। इसी प्रकार चौथे आख्यान भाग में प्राचीन ऋषिवंशों, आचार्य परम्पराओं और राजवंशों की कथाएँ वर्णित है। वाचस्पति मिश्र ने निवर्चन, मन्त्रों का विनियोग, अर्थवाद तथा विधि इन चार प्रकार के प्रयोजनों से ब्राह्मणग्रन्थ पूर्ण बताया है।

''नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।।"

अब हम आख्यान और कथा के बार में जानेगें तभी हम आख्यान ग्रन्थ तथा माईथालाजी के अन्तर को जान सकेंगे।

1.2.1 आख्यान, उपाख्यान और कथा

आख्यायते अनेनेति आख्यानम् अर्थात् आख्यान वह है जिसके द्वारा कहा जाता है। यह आख्यान भारत की आत्मा है, अंग्रेजी में इसे 'मिथक' कहा जाता है। किंतु मिथक शब्द का प्रयोग आख्यान के लिए उचित नहीं है अर्थात् मिथक द्वारा आख्यान को परिभाषित करना सर्वथा अन्याय होगा। क्योंकि भारतीय परम्परा में मिथक की संरचना कभी नहीं हुई, यह संस्कृति मिथक प्रधान नहीं बल्कि तत्त्व दर्शन प्रधान है। मिथक और रूपक में पर्याप्त अन्तर है। भारतीय वाङ्मय में संकेतार्थ को विपुल गांभीर्य और अर्थ विस्तार प्रदान करने की दृष्टि से रूपक और प्रतीक का आश्रय लिया गया है पर मिथक का तो वहाँ स्पर्श मात्र भी नहीं है। जब रूपक और प्रतीक अपने शक्ति ग्रह से भटक कर तत्त्ववाची संकेतार्थ के संदर्भ में अस्पष्ट और अनेक संदेशार्थों से घिर जाते है तब मिथक की संसृष्टि होती है।

आख्यान' में जो क्रिया धातु है वह 'ख्या' है। ख्या का अर्थ होता प्रक्कथन 'ख्या प्रक्कथने'। आख्यान शब्द कहने को भाववाचक संज्ञा शब्द है वस्तुतः आख्यान में जो प्रकथनात्मक, कथनात्मक क्रिया है वही प्रधान है। आख्यान एवं कथा एक ही तत्त्व के दो अलग-अलग रूप है अथवा प्रकटन है। आद्य परम्परा को किस प्रकार आख्यान में सुरक्षित रखा गया है। प्रत्येक आख्यान में एक कहानी होती है गतिशीलता, जीवनमयता, सर्जनात्मकता की अथाह सामर्थ्य

वेद से लेकर आज तक शास्त्र में लोक, और लोक से शास्त्र में किस प्रकार आवाजाही लगी रही।

शुष्क अर्थवादों को बोधगम्य बनाने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों में सरस एवं रोचक आख्यानों का समावेश कर विषय को समझाने का प्रयत्न किया गया है। इन आख्यानों का मूल उद्देश्य विधि-विधानों के स्वरूप की व्याख्या करना है। ब्राह्मणों के अनेक लौकिक आख्यान ही परिवर्ती इतिहास पुराणों के प्रेरक रहे हैं। उनमें से एक एतरेय ब्राह्मण का शुनःशेप आख्यान है। शुनःशेप आख्यान का अपना अलग ही साहित्यिक मूल्य है।

आख्यान को ही परकालीन इतिहास, काव्य, महाकाव्य, आख्यान-ग्रन्थ और नाटकों का बीजरूप माना जाता है। जो बातें बीजरूप में ऋग्वेद में प्राप्य हैं, वे ही ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में सुपुष्पित एवं फलित वृक्ष के रूप में विकसित होने लगी हैं। इनका ही रामायण, महाभारत और पुराणों के युग में अत्यन्त विस्तार हो गया है। इस दृष्टि से आख्यान-तत्त्व ऋग्वेद का महत्त्वपूर्ण विषय है।

ऋग्वेद के आख्यानों के विषय में यह समझ लेना उपयुक्त है कि ये आख्यान काल्पनिक रचनाएँ हैं। इनमें यह प्रयत्न किया गया है कि किसी गूढ दार्शनिक, आध्यात्मिक या नैतिक विषय को, उसके प्रति अरूचि को दूर करने के लिए आलंकारिक आख्यान के रूप में प्रस्तुत किया जाए। यह प्राचीन भारतीय परम्परा रही है कि किसी गूढ या सूक्ष्म विषय को समझाने के लिए किसी कथा या उदाहरण का आश्रय लिया जाए। महाभारत और भागवत-पुराण में भी इस तथ्य की ओर स्पष्ट निर्देश किया गया है कि वेद के गूढ़ार्थ को सरल और रोचक बनाने के लिए ये आख्यान (इतिहास, पुराण) बनाये गये हैं। इनके द्वारा वेद का रहस्य समझना चाहिये।

डॉ0 उर्मिला देवी शर्मा ने अपनी पुस्तक 'शतपथ ब्राह्मण एक सांस्कृतिक अध्ययन' में आख्यान एवं उपाख्यान के विषय में चर्चा निम्नवत की है-

कथा कहानी के विभिन्न रूपों को स्वयं में समाहित कर अपेक्षित अर्थवक्ता को प्रतिपादित करने वाले शब्द '' आख्यान एवं उपाख्यान हैं। 'उप' तथा आ पूर्वक 'ख्या' धातु में भाव में 'ल्युट' प्रत्यय लगने पर उपाख्यान अथवा आख्यान शब्द बनते हैं। शब्दकोशों में उपाख्यान का पूर्ववृत्त 'कथन' तथा आख्यान का कथन अर्थ मिलता है। साहित्य दर्पण 'आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः' कहकर आख्यान का अर्थ भी 'पूर्ववृत्तकथन' ही प्रतिपादित करता है। किसी घटना या उससे सम्बन्ध कथ्य का कथन स्वतः ही 'पूर्ववृत्तकथन' बन जाता है अतः इन दानों शब्दों को समानार्थी भी माना जा सकता है किन्तु अनेक पुराणों में उपाख्यान एवं आख्यान का विभेदात्मक प्रयोग किया गया है -

"आख्ययनैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः बुधाः ।
पुराण संहिता चक्रे पुराणार्थ विशारदाः ।।"

उक्त श्लोक की टीका में श्रीधर स्वामी ने श्लोक उद्धृत किया है जो दोदों शब्दों के अर्थ पार्थक्य की ओर इंगित करता है ।

"स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः ।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते ।।"

स्वयं दृष्टार्थ कथन ' आख्यान' तथा श्रुत अर्थ का का कथन उपाख्यान कहलाता है। शतपथ के इतिवृत्तात्मक प्रसंगों में श्रुत अर्थ के कथन की सर्वातिशयता के कारण उन्हे उपाख्यान कहा जाना ही अधिक उचित होगा।

1.2.2 ऐतरेय ब्राह्मण का परिचय

ऋग्वेद से सम्बन्धित दो ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त होते है। जिनमे ऐतरेय ब्राह्मण अन्यतम है। इसमें 40 अध्याय है जो पाँच-पाँच अध्यायों की 8 पंचिकाओं में विभक्त हैं। 33वें अध्याय में कुल 6 कण्डिकाएँ है तथा प्रत्येक अध्याय का विभाजन कण्डिकाओं में भी हुआ है ऐतरेय ब्राह्मण में कुल 285 कण्डिकाएँ है। मुख्यरूप से सोम याग का वर्णन है जो लगभग 6 पंचिकाओं में है। अन्तिम दो पंचिकाओं में राज्याभिषेक का वर्णन है। अन्तिम 10 अध्यायों में उपाख्यान और इतिहास है। इसकी 33 वे (6 काण्डों) अध्यायों में प्रसिद्ध शुनःशेप आख्यान है, जो 'चरैवेति' चरैवेति' का अर्थात् सततगतिशीलता और सक्रियता का गान करता है। यह ऋग्वेद का सबसे प्रसिद्ध ब्राह्मण है इसके रचयिता ऐतरेय महीदास हैं। 'इतरा काचित् ब्राह्मणपत्नी, इ कामं तरति या सा इतरा, तस्याः इतरायाः अपत्यं पुमान् ऐतरेयः काश्चिदृषिः।'

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ के भाष्यकार

1. **भट्ट गोविन्द स्वामी-** पुरुषकार के रचयिता श्रीकृष्णलीला शुक मुनि (13वीं शताब्दी) ने भट्ट गोविन्द स्वामी के ऐतरेय भाष्य का उल्लेख किया है। पं० भगवदत्त ने गोविन्द-स्वामी का समय 11-12वीं शताब्दी माना है। षड्गुरु- शिष्य के भाष्य की पाद टिप्पणी में कहीं-कहीं गोविन्द स्वामी को उद्धृत किया गया है। विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान, होशियार-पुर में गोविन्द स्वामी का भाष्य हस्तलिखित ग्रन्थों में सुरक्षित है।
2. **जयस्वामी-** पं० भगवदत्त ने ऐतरेय के भाष्यकारों में जयस्वामी का भी उल्लेख किया है। उन्होंने यह संभावना प्रकट की है कि ऋग्वेदीय वाङ्मय टीका के प्रसिद्ध टीकाकार जयन्त स्वामी ही जय स्वामी हो सकते है। रघुनन्दन ने अपने संस्कार तत्त्व के मलमास प्रकरण मं आश्लायन ब्राह्मण के भाष्यकार जयस्वामी का उल्लेख किया है।
3. **षड्गुरु शिष्य-** षड्गुरु-शिष्य का ऐतरेय ब्राह्मण का भाष्य उपलब्ध है। ऐतरेय आरण्यक, आश्वलमन श्रौत एवं गृह्य-सूत्र तथा ऋक्-सर्वानुक्रमणी पर भी इनके भाष्य प्राप्त हैं। षड्गुरु ने सर्वाणुक्रमणीवृत्ति वेदार्थदीपिका संवत् 1234 में लिखी गयी थी।
4. **भट्टभास्कर-** ऐतरेय ब्राह्मण पर भी भट्टभास्कर का भाष्य हैं यह भाष्य विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों में तालपत्रों पर तेलगु अक्षरों में सुरक्षित है। जो कई स्थानों पर जीर्ण-शीर्ण भी हो रहा है। षड्गुरु-शिष्य के प्राप्त भाष्य की पाद टिप्पणी में कहीं-कहीं भट्ट भास्कर के भाष्य को भी उद्धृत किया गया है।
5. **सायण-** वैदिक भाष्यकारों में सायण का विशेष स्थान है। सायण विजयनगर बुक्का एवं हरिहर के मन्त्री थे। जिनका समय इतिहासकारों 1336 से 1387 निश्चित किया है। भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सायण के पिता का नाम मायण और माता सती देवी थी और ज्येष्ठ भ्राता का नाम माधवाचार्य है। इनके विषय में निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है-

श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिमार्यण पिता।
सायणो भोगनाथश्च मनोबुद्धिमहोदरो।।

यस्य बौधायन सूत्र शाखा यस्य च याजुषी।
भारद्वाज कुल जन्म सर्वज्ञ स हि माधव।।

सायण के बारे में उक्ति है कि ***''वेदार्थज्ञाने वस्तुतः सायणाचार्यः अन्धानां यष्टिरिवास्ति'' और किसी ने तो ''एक एव भाष्यकर्ता सायणः इति स्वीकृतम्।''*** वाजसनेय संहिता को छोड़कर प्रायः सभी संहिताओं पर भाष्य किया है अर्थात् सायण ने 5 वैदिक संहिताओं (तैतिरिय, ऋग्वेद, सामवेद, काण्व संहिता अथर्वसंहिता) भाष्य किया है। 11 ब्राह्मणों ग्रन्थों (ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, तैतिरिय ब्राह्मण, पौढ ब्राह्मण, षडविंश, साम विधान ब्राह्मण आर्षेय ब्राह्मण, देवंताध्याय, उपनिषद् ब्राह्मण, संहितापनिषद् ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण) और 2 अरण्यक (एतरेय आरण्यक, तैत्तिरिय आरण्यक) पर भाष्य किया है। इसके अतिरिक्त उनकी अन्य कृतियाँ प्राप्त होती है-

1) सुभाषित सुधा निधि,
2) प्रायश्चित सुधा निधि,
3) पुरुषार्थ
4) आयुर्वेद यज्ञ तन्त्र

वैदिक वाङ्मय से उनका प्रेम, विस्तृत अध्ययन एवं विजयनगर के राज्य को सुदृढ़ करना आदि बातें उसकी असाधारण योग्यता की परिचायक है।

1.2.3 ऐतरेय ब्राह्मण का प्रतिपाद्य

ऐतरेय ब्राह्मण का आरम्भ सोम याग के वर्णन से ही होता है। इनमें सोलह अध्यायों में एक दिन में होने वाले अग्निष्टोम नामक सोमयाग का वर्णन है।

प्रथम अध्याय में दीक्षा के लिए दृष्टि। द्वितीय में प्रायणीय दृष्टि। तृतीय में सोमक्रय एवं अग्निमंथन। चतुर्थ में प्रवर्ग्य, उपसद तथा तानूनपात् दृष्टियो का। पंचम अध्याय में अग्नि, सोम और हविर्धानों को उत्तरवेदी की ओर ले जाने का वर्णन है। षष्ठ अध्याय में पशु-दृष्टि। सप्तम में प्रातरनुवाक्। अष्टम् में अपोनप्त्रीय, नवम् में सोमपान का अधिकार तथा दशवें में आज्यशस्त्र का उल्लेख है। प्रउगशस्त्र का ग्यारहवें अध्याय में वषटकार एवं निविद का बारहवें वैश्वदेव मरुत्वीय और निष्केवल शस्त्र का तेरूवे में अग्निमरु-शस्त्र का चौदहवें में, अग्निष्टोमयाग, तत्सम्बन्ध वस्तुओं एवं यज्ञ के ऋषियों का सामान्य विवेचन पन्द्रहवें अध्याय में उपलब्ध होता है। सोलहवें अध्याय में षोडशी एवं अतिरात्र, सत्रहवें में अश्विन् और 365 दिन में पूर्ण होने वाले गवामपन कृत्य अठारहवें में षडह और विषुवान् सत्र, उन्नीसवें में बादशाह कृत्य तथा बीसवें में द्वादशाह कृत्य के प्रथम दो दिनो के कृत्य का वर्णन है। पंचम पंचिका के अन्तर्गत इक्कीसवें अध्याय में द्वादशाह यज्ञ के तीसरे एवं चौथे दिन का। बाइसवें में पाँचवें दिन और छठे दिन का तेईसवें में सातवें और आठवें दिन का चौथीसवें में नवम्-दशम् दिन के कृत्य के साथ-साथ यज्ञ की पूर्ति भी दिखलाई है। इन अध्यायों में इन छोटे-छोटे यज्ञों के होताओं के कर्त्तव्यों का उल्लेख भी किया गया है। पच्चीसवें अध्याय में यजमान कृत प्रायश्चित उत्सवों तथा अग्निष्टोम यज्ञ करते समय ऋत्विज के कर्त्तव्यों का वर्णन है।

षष्ठ पंचिका में होत्रकों के शस्त्रों (यज्ञों) का वर्णन है। छब्बीसवें अध्याय में ग्रावस्तुत सुब्रह्मण्या के कृत्य सत्ताईसवें में सत्र, अहीन और होत्तकों के शस्त्र, अठाईसवें में होत्रकों के विभिन्न विषय, उन्नीसवें में सम्पात सूक्त, बालखिल्य और दूरोहण का तथा तीसवें में तृतीय सवन के शिल्पशस्त्रों का वर्णन है।

सप्तम पंचिका में पशुयाग, प्रायश्चित तथा राजसूय का वर्णन है इकतीसवें अध्याय में पशुओं के अंगों का विभाजन, बत्तीसवें में यज्ञ की अशुद्धियों के लिए प्रायश्चित्ति, तैतीसवें में शुनःशेप की कथा, चौतीसवें में राजसूय यज्ञ के प्रारम्भिक कृत्य तथा पैंतीसवें में राजा के लिए सोमपान का निषेध करके उदुम्बर, अश्वत्थ और न्यग्रोध आदि के रसपान की विधि वर्णित है।

अष्टम पंचिका में राजसूय का वर्णन है। छत्तीसवें अध्याय में राजसूय यज्ञ के प्रातः मध्यम और तृतीय सवन के स्त्रोत तथा शस्त्र का, सैत्तीसवें में दृष्टि की समाप्ति पर उसी विधि के क्षत्रिय राजा के महाभिषेक का चालीसवें में पुरोहित के कृत्य का वर्णन है। सप्तम एवं अष्टम पंचिका में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के परस्पर सम्बन्ध एवं राजपुरोहितो के अधिकारों का उल्लेख मिलता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ पर किसका भाष्य प्राप्त होता है?
   क) सायण
   ख) अभिनवगुप्त
   ग) रामस्वामी
   घ) आनन्द
2. ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ किस वेद से सम्बन्धित है?
   क) ऋग्वेद
   ख) यजुर्वेद
   ग) सामवेद
   घ) अथर्ववेद
3. ब्राह्मण ग्रन्थ है?
   क) मन्त्रों के विधि भाग की व्याख्या
   ख) मूल मन्त्रों का संग्रह
   ग) रहस्य चिन्तन
   घ) दार्शनिक चिन्तन
4. ऐतरेय ब्राह्मण में कुल कितने अध्याय हैं?
   क) 5
   ख) 10
   ग) 40
   घ) 100

1.3 शुनःशेप आख्यान

1.3.1 शुनःशेप आख्यान का परिचय

शुनःशेप आख्यान ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण की सातवीं पञ्चिका के तृतीय अध्याय (एक से छः खण्डों) में वर्णित है । तदनुसार ऐतरेय आरण्यक का तैंतीसवाँ अध्याय शुनःशेप आख्यान नाम से अभिहित है। इसे हरिश्चन्द्रोपाख्यान भी कहा जाता है।

1.3.2 शुनःशेप आख्यान की कथा

इक्ष्वाकु वंश के वेधस राजा हरिश्चन्द्र निःसन्तान थे। उनकी सौ पत्नियाँ थीं पर किसी से भी उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। उनके घर में नारद और पर्वत ऋषि रहते थे। राजा ने नारद ऋषि से पूछा कि पुत्र होने से क्या लाभ है? महर्षि नारद ने दस श्लोकों में उत्तर दिया, जिसका सारांश यह है कि पुत्र होने से पिता पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है, पुत्र आत्मा से उत्पन्न होने के कारण आत्मवत् होता है, पुत्र द्वितीय लोक की ज्योति (प्रकाशक) है। पति ही पत्नी के गर्भ में प्रविष्ट हो पुत्र रूप में जन्म लेता है, स्त्री तभी जाया होती है जब पुरुष उसमें बीज बो कर उपजता है, जिसके पुत्र नहीं उसका कोई लोक नहीं जिनके पुत्र होते हैं वे शोक रहित हो चौड़े चकले मार्ग पर चलते हैं।

यदि पिता जीते हुए सुखपूर्वक उत्पन्न पुत्र का मुख देख ले तो अपने (लौकिक एवं वैदिक) ऋण को इस (पुत्र) में सम्यक् रूप से स्थापित कर देता है (अर्थात् स्वकीय ऋण से मुक्त हो जाता है) और इस प्रकार वह (पुत्र को लौकिक एवं वैदिक भार अर्पित कर) अमृत्व को प्राप्त करता है।

पृथिवी में प्राणियों के लिए जितने भी भोग हैं और जितने भी (भोग) जातवेद (अग्नि) में है तथा जितने भी (स्नान-पान आदि) भोग जल में है उन सभी भोगों से भी अधिक पिता के लिये पुत्र में भोग लेते है। सर्वदा माता-पिता पुत्र के द्वारा दोनों ही लोको में अत्यन्त ऐहिक आमुस्मिक तमरूप दुःख (नरक) को पार करते हैं, क्योंकि पिता स्वयमेव अपने से ही अपने को (पुत्र रूप में) उत्पन्न करता है। इसलिये वह (पुत्र) (नदी एवं समृद्ध को) ठीक से पार करने के लिए अनुयुक्त नौका के समान है (अर्थात् समुद्र को पार करने के लिये जैसे कई दिन के लिये अन्न आदि सभी सम्राग्रियों को इकट्ठा करके तब संतरण के लिए पुत्र नौका भी अन्न युक्त है।

(शुक एवं शोणित का संयोग रूप) मल यर्थात् गृहस्थाश्रम क्या सुख देना? (कृष्ण) मृगचर्म अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम क्या सुख देना? और कर्म रहित) दाढ़ी-मूँछ अर्थात् वानप्रस्थाश्रम से क्या लाभ है? (इन्द्रियों के नियमनरूप) तप अर्थात् सन्यासाश्रय से क्या लाभ? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं है। अतः हे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि आप सभी लोग (सुख के हेतुभूत) पुत्र की इच्छा करें, क्योंकि वह पुत्र दोषरहित होने से अनिन्दनीय लोक है अर्थात् भोग हेतु है। यहाँ मात्र हरिश्चन्द्र ही यद्यपि पूछने वाले है तथापि सभा में अवस्थित होने से ब्राह्मणों यह सम्बोधन किया गया है।

(शरीर में प्राणों की रक्षा का हेतु भूत होने से) अन्न ही प्राण है। शीत आदि उपद्रवों से रक्षा करने के कारण) वस्त्रं (गृह के समान) शरण है सुवर्ण रूप है, पशु विवाह विशेष है पत्नी सखा है, पुत्री दैन्य ही है। किन्तु पुत्र तो ज्योतिस्वरूप ही है। अतः वह उत्कृष्ट आकाश में है।

पति ही पत्नी में प्रवेश करता है और वह (पति स्वयं ही रेत द्वारा) गर्भ रूप में होकर और जापा अर्थात् माता जन्म देने वाली ही आकार प्रकार रूप से होकर प्रविष्ट होती है। उस माता में पुनः

नवीन होकर (पूर्ण गर्भकाल में) दसवें मास में (वह स्वयं ही) उत्पन्न होता है। अतः पुत्र अपने से अन्य नहीं होता)

इस उपदेश के बाद महर्षि नारद ने राजा से कहा, 'तुम वरुण के पास जाकर पुत्र मांगो और कहो कि मैं उस पुत्र से ही तुम्हारा यज्ञ करूँगा'। राजा ने वैसा ही किया। वरुण की कृपा से राजा को रोहित नामक पुत्र प्राप्त हुआ। वरुण ने राजा से कहा, 'अब तू पुत्र से मेरा यजन कर'। राजा विभिन्न अवस्थाओं की दुहाई दे वरुण को टालता रहा। जब रोहित क्षत्रधारी हो गया तब पुनः वरुण ने कहा, 'अब तू इससे मेरा यज्ञ कर'। राजा ने पुत्र को बुलाया और कहा 'जिसनें तुझको मुझे दिया है मैं तुझे उसको यज्ञ में दूँगा'। पुत्र ने मना कर दिया और वन में चला गया।

अपनी अवहेलना होने पर वरुण ने हरिश्चन्द्र को पकड़ लिया और उसे जलोदर रोग हो गया। इस बात को रोहित ने सुना तो वह जंगल से वापस लौटने लगा। रास्ते में इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप रख उसे **'चरैवेति चरैवेति'** का उपदेश किया। ब्राह्मण की आज्ञा मान रोहित पुनः वन में विचरण करने लगा। छः बार रोहित ने वापस लौटने की इच्छा की और हर बार इन्द्र नें उसे **चरैवेति** का उपदेश कर वापस लौटा दिया। इस तरह रोहित छः वर्षों तक वन में विचरण करता रहा। इसी प्रसंग में वह जंगल में सुयवस के पुत्र अजीगर्त से मिला जो बिना भोजन के रह रहा था। उसके तीन पुत्र थे 1- शुनःपुच्छॅ 2- शुनःशेप व 3- शुनोलांगूल। रोहित ने अजीगर्त से कहा- 'तुम मुझे अपना एक पुत्र यज्ञ करने के लिये दे दो मैं तुम्हें सौ गायें दूँगा'। अजीगर्त लालच में पड़ गया और **सौ गायें** प्राप्त कर लिया। किन्तु उसने ज्येष्ठ पुत्र को लेकर कहा इसे मत लो उसकी पत्नी ने सबसे छोटे पुत्र को देने से मना किया। पर वे दोनों मध्यम पुत्र शुनःशेप को देने के लिये मान गये। रोहित ने **सौ गायें** अजीगर्त को दीं और उसके पुत्र को लेकर घर आया। आकर पिता से बोला मैं इसके द्वारा अपने को यज्ञ बलि से बचाऊँगा। तब राजा हरिश्चन्द्र वरुण के पास जाकर बोला, 'मैं इसके द्वारा तेरा यज्ञ करूँगा'। वरुण ने कहाँ 'अच्छा क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय से श्रेष्ठ है इसलिये मैं इसको ग्रहण करूँगा'। तब वरुण ने उसको राजसूय यज्ञ की विधि बताई। इस प्रकार अभिषेचन के दिन राजा ने पशु के बदले पुरुष को बलि नियुक्त किया।

इस यज्ञ में विश्वामित्र होता थे। जमदग्नि अध्वर्यु थे, वसिष्ठ ब्रह्मा थे तथा अयास्य उद्गाता थे। यज्ञ आरम्भ करने पर बलिपशु के रूप में शुनःशेप को बाँधने के लिये कोई व्यक्ति नहीं मिला । अजीगर्त ने कहा 'मुझे सौ गायें और दो। मैं उसको बाँधूगा'। राजा ने उसे सौ गायें और दी। अजीगर्त ने अपने पुत्र को बाँध दिया। आप्रि मन्त्रों के पाठ और अग्नि की परिक्रमा के उपरान्त बलिपशु का वध करने हेतु कोई नहीं मिला। तब अजीगर्त ने सौ और गायों के बदले उसका वध करना स्वीकार किया। उसे सौ गायें दी गईं और वह तलवार तेज करने लगा। अपने ही पिता को ऐसा करते देख शुनःशेप ने प्रजापति की निम्न ऋचा द्वारा स्तुति करने लगा-

कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्... ऋग्वेद 1/24/1

प्रजापति ने उसे अग्नि के पास अग्नि ने सविता के पास सविता ने वरुण के पास वरुण ने पुनः अग्नि की शरण में जाने को कहा। तब अग्नि ने उसे विश्वदेवों की स्तुति करने के लिये कहा। विश्वदेवों ने उसे देवराज इन्द्र के पास जाने को कहा उसके इन्द्र की स्तुति करने पर इन्द्र ने उसे एक सोने का रथ दिया और अश्विनों की स्तुति करने को कहा अश्विनों ने उषा की स्तुति के लिये आदेश किया।

इस प्रकार जैसे-जैसे शुनःशेप विभिन्न देवों की स्तुति करता गया। उसके बन्धन खुलते गये और हरिश्चन्द्र का पेट पचता गया। जब उसने अन्तिम मन्त्र पढ़ा तो उसके सभी बन्धन खुल गये और राजा हरिश्चन्द्र पूरी तरह स्वस्थ हो गया। अब ऋत्विजों ने शुनःशेप से कहा- 'अब तू हम में से ही एक है। अतः आज के यज्ञ में भाग ले'। तब शुनःशेप ने सोमरस निकालने की विशिष्ट विधि निकाली और चार ऋचाओं द्वारा सोम निकालकर द्रोणकलश में रखा। उसने सोमयज्ञ किया और यज्ञ की अन्तिम आहुतियाँ देते हुए हरिश्चन्द्र को आहवनीय के पास बुलाकर मन्त्र पढे।

यज्ञ की समाप्ति पर शुनःशेप विश्वामित्र की गोद में जा बैठा। अजीगर्त ने विश्वामित्र से कहा- 'हे महर्षि मुझे मेरा पुत्र लौटा दो'। विश्वामित्र ने कहा- 'इसे मुझे देवों ने दिया है अतः अब से यह मेरा पुत्र हुआ। आज से इसका नाम देवरात वैश्वामित्र है। मैं इसे अपने सभी पुत्रों में ज्येष्ठ के रूप में स्वीकार करता हूँ।' इसके बाद विश्वामित्र ने अपने सभी सौ पुत्रों की सहमति चाही। उनमें से मधुच्छन्दा से ज्येष्ठ पचास पुत्रों ने विरोध किया तथा शेष सभी पचास पुत्रों ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए शुनःशेप को ज्येष्ठ भ्राता का स्थान दिया। अपना विरोध करने वाले पचास पुत्रों को विश्वामित्र ने शूद्र हो जाने का शाप दिया। उन्हीं से एन्ध्रॉ, पुण्ड्रॉ, शबरॉ, पुलिंद आदि दस्यु जातियाँ प्रचलित हुईं। इसके अनन्तर विश्वामित्र ने अपना समर्थन करने वाले पुत्रों की स्तुति की।

इस तरह शुनःशेप विश्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्र हुए। ये जह्नु ऋषि की सम्पत्ति और गाथि ऋषि के वंश की विद्या की परम्परा को धारण करने के कारण दो ऋषियों की परम्परा के वाहक हुए। यहाँ पर शुनःशेप आख्यान सम्पन्न होता है। इसके बाद इस आख्यान के पठन-श्रवणादि का माहात्म्य वर्णित है। विभिन्न पापों के निवारण और सन्तान की प्राप्ति के लिये शुनःशेप की कथा का श्रवण लाभदायी है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. शुनःशेप आख्यान किस वेद से सम्बन्धित है?
   क) ऋग्वेद
   ख) सामवेद
   ग) अथर्ववेद
   घ) यजुर्वेद
2. शुनःशेप आख्यान किस ब्राह्मण ग्रन्थ से सम्बन्धित है?
   क) शतपथ
   ख) ऐतरेय
   ग) ताड्य
   घ) गोपथ
3. अजीगर्त ने शुनःशेप को बांधने के लिये कितने गायें ली थी?
   क) 100
   ख) 200
   ग) 150

घ) 1000

4. हरिश्चन्द्र के पुत्र का क्या नाम था?

क) रोहिताश्व

ख) राहुल

ग) शुनःशेप

घ) अजीगर्त

5. अजीगर्त ने किस पुत्र को बलि देने के लिये तैयार हुआ था?

क) ज्येष्ठ

ख) कनिष्ठ

ग) मध्यम

घ) अग्रज

1.4 शुनःशेप आख्यान का महत्त्व

संहिता में स्तुति की प्रधानता है जबकि ब्राह्मण ग्रन्थ विधि प्रधान है। ब्राह्मण ग्रन्थ गद्यात्मक होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ गृहस्थियों के कर्म करने हेतु प्रेरित करते है। अर्थात् कह सकते है ब्राह्मण ग्रन्थ गृहस्थ आश्रम में रहने वालों को कर्म योग सिखाता है। संस्कृति को पहली बार ब्राह्मण ग्रन्थों के विचारकों ने परिभाषित किया। कला, शिल्प, सौन्दर्य और काव्य के विषय में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये। शिल्प और संस्कृति के विषय में ऐतरेय कहते है-

आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि, छन्दोमयं वा।
एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरूते।

(शिल्प कलाएँ मनुष्य के चित्त का संस्कार करती है। इनसे सुसंस्कृत बनता है।) ब्राह्मण ग्रन्थों की बहुत बड़ी विशेषता समाज को सत्पथ पर अग्रसर करने के संदेश में निहित है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ को सर्वोपरि माना गया है। **(यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म)** यज्ञ करने से मनुष्य पापो से मुक्त हो जाता है। (**सुर्वास्मात्माप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति**) यज्ञ करने से वैयक्तिक आत्मोद्धार के साथ सामाजिक कल्याण भी होता है। क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में ही कहा गया है कि यज्ञ करने से सम्पूर्ण प्रजा का कल्याण होता है।

वाचस्पति गैरोला ने वैदिक साहित्य एवं संस्कृति नामक ग्रन्थ में ब्राह्मण-ग्रन्थों की विशेषता बतलाते हुये कहते है कि 'ऐतिहासिक दृष्टि से विशाल हिन्दू जाति के सामाजिक, धार्मिक और नैतिक विकास की परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनमें अनुसन्धानोपयोगी पर्याप्त प्रमाणित सामग्री सुरक्षित है। पुराणों के वंशानुचरित की सामग्री का मूल ब्राह्मण ग्रन्थों की ही सामग्री है। कर्तव्य, सदाचार नैतिकता और वर्णाश्रमों की व्यवस्था के लिए जो विशाल साहित्य लिखा गया उसका आधार भी ब्राह्मण ग्रन्थ ही रहे हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता है कि वे सब गद्य में होते है।

ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण

ब्राह्मण ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शो के प्रतीक, आर्य जाति के सर्वस्व और ज्ञान विज्ञान एवं कला कौशल के विश्वकोश हैं। उनमें इस राष्ट्र की उच्च चारित्रिकता और नैतिकता विद्यमान है।

वैदिक साहित्य में ऐतरेय ब्राह्मण के महत्त्व का कारण शुनःशेप का आख्यान है। साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही शुनःशेप का आख्यान बड़ा ही हृदयद्रावक है। संक्षेप में यहाँ उपलब्ध शुनःशेप का आख्यान इस प्रकार है।

शुनःशेप का यह आख्यान इस दृष्टि से बहु ही महत्त्वपूर्ण है कि इससे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

ऐतरेय ब्राह्मण का अनेक दृष्टियों से अपना विशेष महत्त्व है । उसके तीन अध्याय में ऐतिहासिक तथा भौगोलिक साम्रगी से भरपूर हैं । उसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन भारत की पूर्वी सीमा पर विदेह आदि जातियों का शासन था। इसी प्रकार दक्षिण में भोज, पश्चिम में नीच्य तथ अपाच्य जातियां शासन करती थी। मध्यदेश में कुरू तथा पांचल लोग राज्य करते थे। इन अध्यायों में परीक्षित् पुत्र जनमेय, मनुपुत्र शर्याति, उग्रसेन युधांश्रौष्ठि, पिजवानपुत्र सुदास और दुष्यन्त पुत्र भरत आदि ऐतिहासिक राजाओं तथा काशी, मत्स्य, कुरूक्षेत्र और खाण्डव आदि राज्यों का विस्तृत वर्णन हुआ है।

शुनःशेप आख्यान धर्मशास्त्र और नृवंशविज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। राज्याभिषेक के समय राजा को यह आख्यान अवश्य सुनाया जाता है।

राजसूय यज्ञ में सुवर्ण निर्मित सूत्र से बने आसन पर बैठकर होता राजा के अभिषेक के समय इस आख्यान को कहता है। इस आख्यान के मध्य अध्वर्यु भी सुवर्ण निर्मित सूत्र से बने हुए आसन पर बैठकर प्रतिगरण करता है, वस्तुतः हिरण्य ही यश है, अतः वह राजा को यश से समृद्ध करते हैं। ऐसा ही हो यह प्रतिगर है। इस प्रकार द्वैवी एवं मानुषी प्रतिगर के द्वारा अध्वर्यु इस सजा को अपकीर्ति रूपी पाप से और नरक रूपी आकुष्मिक पाप से प्रकृष्ट रूप से मुक्त करता है। **''पुत्रकायाः हाप्याख्यायेरल्लभन्ते ह पुत्राल्लँभन्ते ह पुत्रान्।''** जो पुत्रों की कामना वाले है उन्हे भी शुनःशेप की कथा (ब्राह्मण क मुख से) सुनना चाहिये। इस प्रकार उन्हें पुत्रों की प्राप्ति होती है। मनुष्य को निरन्तर कर्म में लिप्त रहने का उपदेश देने के कारण इस आख्यान का महत्त्व और बढ़ जाता है, जैसा निम्न प्रकार से कथित है-

बैठे हुये व्यक्ति का भाग्य भी (उद्योग के अभाव में) बैठ जाता है और खड़े हुये व्यक्ति का भाग्य भी वृद्धि की ओर उन्मुख होता है। भूमि पर शयन करने वाले व्यक्ति का भाग्य भी सो जाता है; और (देश-विदेश) पर्यटन करने वाले पुरुष का भाग्य भी दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है। अतः तुम विचरण ही करते रहो। इसी उपदेश के कारण यह 'शुनःशेप' आख्यान अमर हो गया । यही आख्यान भागवत- महापुराण नवम स्कन्ध में उपवृंहित है जिसके कारण इसके महत्त्व का पता चलता है। यथा

कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरंश्चरेवेति।।

उपर्युक्त इस उपदेश के कारण ही इस आख्यान का माहात्म्य और बढ जाता है। श्रीमद्भागवत् पुराण के नवम स्कन्ध में हरिचन्द्रोपाख्यान के रूप में उपबृंहित होने कारण इस आख्यान का

कितना महत्ता को प्रदर्शित करता है। यथा-

शुनःशेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात् प्रचक्ष्यते।
सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूप तेः।।

विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम्।
मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसापोऽनिलेन तत्।।

खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि।
तस्मिञ्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाज्ञानं विनिर्दहन्।।

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा।
अनिर्देश्याप्रतर्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः।।

ऋग्वेद के सात सूक्तों में 1.24.30 के ऋषि अजीगर्त शुनःशेप के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण में दी गयी है। वही श्रीमद्भागवत् पुराण के नवम स्कन्ध में हरिचन्द्रोपख्यान के रूप में उपबृंहित हुआ है। पुनः हिन्दी साहित्य में सत्य हरिचन्द्र नाटक के रूप में समाज में आया है। इसी हरिचन्द्र नाटक को देखकर गांधी पर अमिट छाप पड़ा था जिसका निर्वहन गांधी जी ने आजीवन किया और गांधी जी का योगदान ने केवल भारतके लिये अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिये है सत्य और अहिंसा एवं अनासक्तभाव की शिक्षा दिया। जो सम्पूर्ण प्राणी मात्र के लिये अनुकरणीय है।

1.5 सारांश

प्रस्तुत आख्यान में निम्न प्रसंगों का वर्णन प्राप्त होता है-

पुत्र से लाभ पुत्र ज्योति स्वरूप है। जिसके पुत्र नहीं है उसके इहलोक नहीं ''**पापुत्रस्य लोकोऽस्तीति, तत्सर्वे पशवो विदुः''**, पुत्रोत्पत्ति और वरुण देवता के लिए यज्ञ करने की शपथ, रोहित के स्थान पर शुनःशेप का क्रय, हरिश्चन्द्र का राजसूय अनुष्ठान, बन्धव से मुक्त शुनःशेप का उत्तरकालीन वृत्तान्त विश्वामित्र द्वारा उसका ग्रहण, विश्वामित्र के पुत्रों का वृतान्त और कथा की फलश्रुति वर्णित है।

अतः होता एवं अध्वर्यु को सुवर्णनिर्मित सूत्र से बने हुये आसन पर बैठकर कहने का विधान वर्णित हैं। जिससे श्रवण से राजा को (अकीर्ति रूपी ऐहिक) पाप से और (नरक रूपी आमुष्मिक) से प्रकृष्ट रूप से मुक्त करता है। अतः यह आख्यान पाप नाशक है। यदि राजसूय यज्ञ से रहित अयजमान भी जो कोई राजा यदि विजयी हो तो उसे इस शुनःशेप आख्यान कहलवाना चाहिये अर्थात् विजय के अवसर पर इसका राजा या अन्य को श्रवण करना चाहिये। इस प्रकार करने से उसमें पाप का लेशमात्र भी शेष नहीं रहेगा।

शुनःशेप आख्यान से प्राप्त शिक्षाएँ-

1. वचनभंग का पाप होता है, वह दण्डनीय है। अतः राजा कोजलोदर हो गया।
2. इन्द्र का चरैवेति का उपदेश जो जीवन में कर्मठता की शिक्षा देता है। कर्मठता से ही श्री मिलती है।

3. लोभी व्यक्ति कुछ भी निन्दनीय कर्म कर सकता है। अजीगति ने न केवल अपने पुत्र को बेच दिया बल्कि बाँध दिया और न केवल बाँधा बल्कि वध के लिये भी तैयार हो गया।
4. किसी भी देवता के लिये नरबलि देना अतिनिन्दनीय कर्म माना गया।
5. मन्त्रों में शक्ति है।

1.6 शब्दावली

नारद :- ''नरस्य धर्मो नारं, तत् ददाति इति नारदः'' ''नार + दा + क'' नारद एक प्रसिद्ध देवर्षि का नाम है दिव्य ऋषिः इति देवर्षि जिसने देवत्व को प्राप्त किया है। देवर्षि नारद ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में से एक हैं। जो ब्रह्मा के जंघा से उत्पन्न हुए हैं। इन्हें वेदों के संदेश-वाहक के रूप में चित्रित किया गया है। जो मनुष्यों को देवताओं का संदेश देते थे। इन्होंने वीणा का आविष्कार किया था और इन्हीं के नाम पर नारदस्मृति भी है जिसके रचयिता है इन्हें ही माना जाता है।

वरुण : - ''वृणोति इति वरुणः'' वृधातु से उनन् प्रत्यय करके वरुण शब्द बना है मेघजाल से आकाश को आच्छादित कर लेने वाला। वरुण, एक देवविशेष नाम है जिन्हें जल के देवता के रूप में जाना जाता है।

इन्द्र :- ''इशें दृणाति इति वा'' दूरा अन्न को कहते हैं उस अन्न का कारण है जल, और जल का आधार है। मेघ। उस मेघ को फाड़कर है उससे जन बरसाता है वह इन्द्र हैं। या अन्न के बीच का जो आर्द्र अंकुर है उसे जो वर्षा से फोड़ता है वह इन्द्र है।

संविता :- सूते लोकादीनिति (सू + तृच) सूर्यः। विजित नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभा मनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत। ऋवेद में वर्णित सूर्य देवता हैं और इस शब्दका अर्थ उत्पन्न करना, गति देना अथवा प्रेरणा देना है। सविता का स्वरूप आलोकमय तथा स्वर्णिम है।

रोहित :- रोहतीति रूह्। ''रूहे रश्च लो वा उष्पादि इतन् प्रत्यय होकर बना है जो गहरे लाल रंग का सूचक है। इसका अर्थ- सूर्य की पहली किरणें और भगवान विष्णु का भी एक नाऊ है।

विश्वामित्र : - (विश्वमेव मित्रमस्य) इति ''मित्रे चर्षो'' इत्यनेन विश्वस्य दीर्घ, बह्मर्षिविशेषः। प्रजापति के पुत्र कुश, कुश के पुत्र कुशनाथ और कुशनाभ के पुत्र राजा गाधि थे। विश्वामित्र उन्हीं के पुत्र थे।

यज्ञ :- ऐतरेय में कहा गया है ''यज्ञो वै हिरण्यम्''। शतपथ में कहा गया है कि ''अध्वरो वै यज्ञः'' अर्थात् अध्वर ही यज्ञ है। 'ध्वर' धातु हिंसार्थक है। हिंसा का प्रतिषेध होने के कारण यज्ञ को 'अध्वर' कहा जाता है। शतपथ का कथन है 'अध्वरो वै यज्ञः' के दो अभिप्राय सम्भव है। प्रथम यज्ञ हिंसा रहित होता है तथा द्वितीय हिंसा रहित यज्ञ ही वास्तविक यज्ञ है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

अभ्यास प्रश्न क्र. 1 - 1. क, 2. क, 3. क, 4. ग।

अभ्यास प्रश्न क्र. 2 - 1. क, 2. ख, 3. क, 4. क, 5. ग।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत वाङ्मय वृहद इतिहास, श्री बलदेव उपाध्याय।
2. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, वाचस्पति गैरोला।
3. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी।
4. आख्यान, पं० विद्यानिवास मिश्र।
5. वैदिक साहित्य का इतिहास, डॉ० कर्ण सिंह।
6. ऐतरेय ब्राह्मण, पं० सुधाकर मालवीय।
7. शतपथ ब्राह्मण एक सांस्कृतिक अध्ययन डॉ0 उर्मिला देवी शर्मा, प्रथम संस्करण, 1982 ई0 मेहरचन्द लक्षमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

1.9 बोध प्रश्न

1. शुनःशेप आख्यान का अपने शब्दों में वर्णन करें।
2. मानव जीवन में कर्म के महत्त्व का वर्णन शुनःशेप आख्यान के आधार पर करें।
3. शुनःशेप आख्यान में निहित शिक्षओं को अपने शब्दों में लिखिये।
4. वैदिक साहित्य में आख्यान को महत्त्व को शुनः शेप आख्यान के सन्दर्भ में स्पष्ट करें।
5. आख्यान, उपख्यान एवं कथा का क्या तात्पर्य है स्पष्ट कीजिये।
6. वैदिक साहित्य में आख्यान का स्थान निर्धारण कीजिये।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 शतपथ ब्राह्मण 1/8 मनु-मत्स्य आख्यान के आधार पर सृष्टि-रचना

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मनु-मत्स्य संवाद परिचय

2.3 मनु-मत्स्य संवाद

2.4 मनु-मत्स्य संवाद का प्रतिपाद्य

2.5 मनु-मत्स्य संवाद एवं सृष्टि रचना

2.6 मनु-मत्स्य संवाद का वैशिष्ट्य

2.7 अन्य साहित्यों में जलप्लावन आख्यान

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

2.11 बोध प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

1. मनु-मत्स्य संवाद के मूल कथानक से परिचित हो सकेंगे।
2. जलप्लावन आख्यान के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।
3. सृष्टि-प्रक्रिया के वैदिक सिद्धान्त से परिचित हो सकेंगे।
4. यह सृष्टि भौतिक और जैवीय तत्त्वों का क्रमिक विकास है, इसका आपको ज्ञान हो सकेगा।
5. वैदिक संस्कृति के परस्पर-पूरकता सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

वैदिक मन्त्रों में ऋषियों के सृष्टिविषयक अनेक चिंतन दिखाई पड़ते हैं यह तो प्रत्येक मन्त्र में सृष्टिविज्ञान सम्बन्धित किसी न किसी तत्व की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु वैदिक संस्थाओं में कुछ ऐसे विशिष्ट सूत्र हैं जिनमें सृष्टिविषयक चिंतन को सुनियोजित एवं व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है

ऋग्वेद में कुछ सूक्त ऐसे हैं जैसे- पुरुष सूक्त, विश्वकर्मा सूक्त, वाक सूक्त, नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, देव सूक्त तथा सृष्टि सूक्त, में सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी विवेचन स्पष्ट रूप से

प्राप्त होता है। इन सूक्तों में सृष्टि क्या है? यह कबसे प्रारंभ हुई? इसकी उत्पत्ति का क्रम क्या है? इसके धारक तत्व कौन-कौन से हैं? उनका परस्पर सम्बन्ध क्या है? आदि प्रश्नों के उत्तर प्रतीकात्मक, व्याख्यानात्मक शैली में उपरोक्त सूक्तों में प्राप्त होते हैं। गूढ़ रहस्यात्मक भाषा में बताए गए इन तथ्यों को सामान्य बुद्धि से समझना अति कठिन है। इनकी विवेचना में ऋषियों ने ऐसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है जो तत्कालीन समय में प्रचलित थे कालांतर में ज्ञान की परम्परा बाधित होने से इनका स्वरूप जटिल हो गया तथा उन सूक्तों के निहितार्थ को आख्यान-उपख्यान के रूप में सम्प्रेषित किये जाने लगे। शतपथ ब्राह्मण के महत्त्वपूर्ण उपाख्यानों में मनु-मत्स्य संवाद अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसे जलप्लावन आख्यान के नाम से भी जाना जाता है।

2.2 मनु-मत्स्य संवाद परिचय

मनु-मत्स्य संवाद शतपथ ब्राह्मण के अष्टम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में जलप्लावन आख्यान के रूप में कुल दश कण्डिकाओं में वर्णित है जो निम्नवत हैं-

प्रथम कण्डिका - मनु के हाथ में मत्स्य का आना

द्वितीय कण्डिका - मनु एवं मत्स्य का संवाद

तृतीय कण्डिका - मत्स्य द्वारा अपने भरण-पोषण का उपाय बतलाना

चतुर्थ कण्डिका - मत्स्य द्वारा बाढ़ से बचने का उपाय बतलाना

पंचमी कण्डिका - बाढ़ के आने पर मनु का मत्स्य के कथनानुसार कार्य करना एवं उत्तरगिरि पर पहुंचना

षष्ठी कण्डिका - बाद के द्वारा सबको बहा ले जाना तथा मनु का बच जाना।

सप्तमी कण्डिका - प्रजाकामी मनु के पाकयज्ञ से एक युवती का उत्पन्न होना

अष्टमी कण्डिका - मित्र एवं वरुण का युवती से वार्तालाप

नवमी कण्डिका - मनु एवं उस युवती से वार्तालाप

दशमी कण्डिका - इडा द्वारा वजन एवं मनु का समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त करना

2.3 मनु-मत्स्य संवाद

यहाँ शतपथ ब्राह्मण में वर्णित मनु-मत्स्य संवाद अथवा जिसे जलप्लावन आख्यान भी कहा जाता है को मूल ब्राह्मण के अनुवाद एवं शब्दार्थ के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है-

प्रथमा कण्डिका

मनवे ह वै प्रातः अवनेग्यमुदकमाजहुर्यथेदं पाणिभ्यामवने- जनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे।

अनुवाद- (निश्चय ही) मनु के लिए (वे परिचर) प्रातः काल (हाथ आदि को) धोने के लिए जल ले आये। उसी प्रकार जैसा कि इस समय हाथ धोने के लिए जल लाते हैं। (उस समय) हाथ धोने वाले (मनु) के हाथ में (एक) मत्स्य आ गया।

हवै - निपात हैं, जो अपने पूर्ववर्ती शब्द पर निश्चय ही के द्वारा विशेष बल देते हैं। ये वैदिक गद्य में प्रचुरता से पाये जाते हैं। ये प्रायः अर्थरहित एवं पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त होते हैं।

मनवे - मनु, विवस्वान् के पुत्र हैं। अतः इन्हें वैवस्वत मनु कहा जाता है। अवनेग्यम् - अवनेज्यम् - जिस जल से हस्तादि का प्रक्षालन किया जाता है। यथेदं एवं- आज भी प्रातःकाल हाथ मुख धोने के लिए जल का प्रयोग होता है। मनु के परिचर प्रातः काल की क्रिया के सम्पादन के लिए अवनेज्य जल ले आये। अवनेनिजानस्य- हाथ धोने वाले के अर्थात् मनु के। मत्स्यः आपेदे- भावी अभिप्राय की सिद्धि के लिए देवता ही मत्स्य के रूप में हाथ में आ गया।

इसमें मत्स्यावतार की कथा बीज रूप में कही गयी है। आगे चलकर पुराण एवं महाभारत आदि ग्रंथों में यह विस्तार से बतलायी गयी है। जलाप्लावन की कथा संसार के सभी धर्म ग्रंथों में किसी न किसी रूप में पायी जाती है। ऋग्वेद के प्रजापति आदि सूक्तों में भी एक विशाल जलराशि के संसार में आने का वर्णन पाया जाता है जैसे- 'यश्चिदापः बृहतीर्विश्वमायन्श्। इससे प्रगट होता है कि प्रचीन काल में विशाल जलराशि ने प्रलय की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। औध की विनाशलीला की समाप्ति के पश्चात् ही पुनः मानवी सृष्टि का उद्भव हो सका है।

द्वितीया कण्डिका

स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामिश् त्वेति। कस्मान्मा पारयिष्यसीति। औघ इमाः सर्वा प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति। कथं ते भृतिरिति।।

अनुवाद- मत्स्य ने मनु से कहा। मेरा पालन करो मैं तुम्हें पार लगाऊँगा। (मनु ने प्रश्न किया) मुझे किससे पार लगाओगे, (मत्स्य ने उत्तर दिया) विशाल जलराशि इन सभी प्रजाओं को बहा ले जायेगी, उससे मैं तुम्हें पार करूँगा। (मनु ने पुनः प्रश्न किया मेरे द्वारा) तुम्हारा भरणपोषण कैसे होगा?

वाचम्- मत्स्यरूपी देवता ने मानवी वाणी में मनु से वार्तालाप किया। उवाद-उवाच- बोला। आदेशात्मक स्वर में उसने कहा कि तुम मेरा पालन करो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। वच् लिट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन। बिभृहि- पारयिष्यामि पालु लृटलकार उत्तमपुरुष एकवचन औघः भावी विशाल जलराशि के संसार में आने तथा सम्पूर्ण प्राणियों के विनाश का मत्स्य स्पष्ट कथन करते हुए राजा को सचेत करता है। संसार के सभी धर्मग्रंथों में इस प्रलयकारी बाढ़ की चर्चा विद्यमान है जिसमें समस्त प्रजाओं का विनाश हो गया था।

सर्वा प्रजाः भारतीय विद्वानों के अनुसार इसका अभिप्राय भारत में निवास करने वाली समस्त प्रजाओं से है जब कि प्रो0 एग्लिङ्ग के अनुसार भूमण्डल पर विद्यमान समस्त प्राणिजगत्।

कथं ते भृतिः मत्स्य के भविष्य कथन से भयभीत मनु के मन में मत्स्य के प्रति सहज स्नेह उत्पन्न होता है। पर समस्या है कि उसका भरणपोषण कैसे होगा क्योंकि छोटा सा यह मत्स्य साधारण नहीं है। अतएव राजा उसके भरण पोषण के बारे में जिज्ञासा करते हैं।

तृतीया कण्डिका

स होवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बहूवी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति। कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि। स यदा तामतिवर्धा अथ कर्षू खात्वा तस्यां मा बिभरासि। स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि। तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति।

अनुवाद- मत्स्य ने कहा जब तक हम छोटे रहते हैं, हमारे लिए बहुत विपत्तियाँ रहती हैं। (बड़ा) मत्स्य ही (छोटे) मत्स्य को निगल जाता है। पहले मुझे कुम्भी (घड़े) में रख देना। जब उससे अधिक बढ़ जाऊँ अर्थात् उसमें न समाने लगूँ तब गढ्ढा या खन्ती खोदकर उसमें रख देना। जब उससे भी अधिक बढ़ जाऊँ तब मुझे समुद्र में डाल देना। तब मैं विपत्ति से परे हो जाऊँगा।

भृतिवर्थे - अतिरिक्त वृद्धि को प्राप्त हो जाऊँ।

मत्स्य एव मत्स्यं गिलति- बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा जाती हैं इसे मत्स्यन्याय भी कहते हैं। यह मनुष्यों पर भी लागू होता है। इसे एक सुन्दर मुहावरे के रूप में देखा जा सकता है।

चतुर्थी कण्डिका

शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्धते ऽथेतिथीं समां तदोष आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै। स औघ उत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति।

अनुवाद- शीघ्र ही वह बड़ा मत्स्य बन गया। (प्रायः) मत्स्य बढ़कर बहुत बड़ा हो जाता है। तत्पश्चात् (मत्स्यने कहा) - इस वर्ष में वह बाद आयेगी, तब नाव बनाकर मेरे कथनानुसार कार्य करना। बाढ़ के उठने पर नाव में बैठ जाना। उससे मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

शश्वत्- यह यहाँ अत्यन्त क्षिप्रता का बोधक है। झषः - छोटा सा मत्स्य एकाएक महामत्स्य बन गया क्योंकि जलीय प्राणियों की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है। प्रो0 एग्लिंग के अनुसार सम्भवतः झष का अभिप्राय यहाँ सींग वाले बड़े मत्स्य से है। तैत्तिरीय संहिता 1.7.1 तथा 2.6.7 में इडा को मित्र तथा वरुण देवताओं के द्वारा उत्पन्न एक गाय के रूप में कहा गया है सम्भवतः इडा के पशुत्व का प्रतीकात्मक वर्णन सींगवाले महामत्स्य के पुराने आख्यान का ही पोषक है।

इतिथीं समां- इतिथ़डीप्=इतिथी। मत्स्य ने तिथियों की संख्या को गिनकर अमुक वर्ष में बाढ़ आयेगी, इसका निर्देश किया था। प्रो0 मैक्समूलर के अनुसार मत्स्यने मनु से कहा- जब मैं पूर्ण वृद्धि को प्राप्त कर लूँगा, उसी वर्ष में बाढ़ आयेगी।

उपासास- भाष्यकार एवं प्रो0 मैक्समूलर इस का एक ही 'अर्थ पूजा' करना, करते हैं, जब कि प्रो0 एग्लिंग ने 'मेरे कथन पर ध्यान देना' ऐसा किया है। डा0 मूर ने 'मेरा आश्रय लेना' बतलाया है।

पंचमी कण्डिका

तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासां चक्रे। स औघ उत्थिते नावमापेदे। तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य, श्रृंगे नावः पाशं प्रति मुमोच। तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव।।

अनुवाद :- उसकी इस प्रकार रक्षाकर वे समुद्र में ले गये। उसने जिस वर्ष में बतलाया था उस वर्ष में (मनु ने) नाव को बनाकर पूजन किया। बाढ़ के उठने पर वह नाव में बैठ गया। वह मत्स्य तैरता हुआ उसके समीप आया। उसकी सींग में (मनु ने) नाव की रस्सी को बाँध दिया। उस रस्सी के सहारे वह (मनु की नाव को) शीघ्रतापूर्वक उत्तरगिरि तक ले गया।

भृत्वा - मनु ने मत्स्य के कथनानुसार उसकी रक्षा करके अथवा उसका भरणपोषण करके समुद्र में पहुँचा दिया। तिथियों की गणना के आधार पर जिस वर्ष में बाढ़ आने की भविष्यवाणी की

गयी थी उस समय के आ जाने पर मनु ने मत्स्य के निर्देश के अनुसार नाव की संरचना कर डाली। उपन्यापुप्लुवे- तैरता हुआ पास आया। बाढ़ के आने पर मनु नाव में बैठ गये। तत्पश्चात् उनकी नाव को बचाने के लिए मत्स्य तैरकर उनके पास आया। तेनैतमुत्तरंगिरिं अतिदुद्राव - 'उस रस्सी के सहारे वह (मनु की नाव को) उत्तरगिरि तक ले गया' भाष्यकार के इस कथन को प्रो0 एग्लिंग ने उचित माना है। परन्तु प्रो0 बेवर के अनुसार - वह उसे उत्तरगिरि के पार ले गया यह अर्थ करना चाहिए। प्रो0 मैक्समूलर 'उत्तरगिरि' पर तथा डा0 मूर 'उत्तरगिरि के पार' अर्थ करते हैं।

षष्ठी कण्डिका

स होवाच। अपीपरं वै त्वा। वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीत्। यावद्यावद् उदकं समवायात् तावत्तावदन्ववसर्पासीति। स ह तावत्तावदेवान्व वससर्प, तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः सर्वाः प्रजाः निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे।

अनुवाद- उस (मत्स्य) ने कहा - (मैंने) तुम्हें बचा लिया। वृक्ष से नाव बाँध दो किन्तु तुम्हारे पर्वत पर रहते समय जल और तुम्हारे बीच व्यवच्छेद न हो। जैसे-जैसे जल नीचे घटता जाय वैसे-वैसे तुम भी नीचे उतरते आना। वे (मनु) उतना ही उतना नीचे उतरे। (जिस मार्ग से मनु नीचे उतरे) वह उत्तरगिरि का (मार्ग या ढलान) तबसे मनोरवसर्पण (मनु के नीचे उतरने का मार्ग) कहा जाता है। बाढ़ ने उस समय उन सभी प्रजाओं को बहा दिया। अकेले मनु ही यहाँ (संसार में) बचे रह गये।

अपीपरं- पालितवानस्मि- बचा लिया अथवा पार कर दिया। अन्तश्छैत्सीत् तद्देशमध्यं भित्वा पृथगकार्षीद् - जल तुम्हें बीच में छोड़कर अलग न हो जाय। 'जल तुम्हें अलग न कर दें' ऐसा प्रो0 मैक्समूलर का अभिप्राय है। प्रो0 एग्लिंग ने यद्यपि इसका अनुवाद 'जल तुम्हें अलग-थलग न कर दें' किया है परन्तु वे 'जल तुम्हें तट पर ही न छोड़ दें' से अधिक सहमत हैं। यावद्यावद् उदकं समवायात तावत्तावदन्ववसर्पासीति- मत्स्य ने मनु को स्पष्ट निर्देश दिया कि उसके और जल के बीच विच्छेद न होने पाये। ज्यों-ज्यों जल पर्वत शिखर से नीचे उतरता जाय वह भी उसके साथ धीरे-धीरे नीचे चला जाय। सम्भवतः मत्स्य जल के विच्छेद के कारण मनु के शिखर से फिसलने के भय से आक्रान्त था। अतएव उसने जल के साथ- साथ उतरने का परामर्श दिया। मनोरवसर्पणम्- येन च वर्त्मना मनुरवसृप्तः, तद् अद्यत्वेऽपि एतद् उत्तरस्य गिरेः मनोरवसर्पणम् इत्याहुः। अवसृप्तो ऽनेनेत्यवसर्पणम्। उत्तरगिरि पर्वत के जिस मार्ग से मनु नीचे उतरे उसे आज भी मनोरवसर्पण कहा जाता है। महाभारत के अनुसार हिमालय की जिस चोटी पर नाव बाँधी गयी थी उसे 'नौबन्धन' कहते हैं। प्रो0 बेवर के अनुसार अथर्ववेद में आया श्नाव-प्रभ्रंशनश् शब्द भी हिमालय से सम्बन्धित है। (16.36.8)

सप्तमी कण्डिका

प्रजाकामी मनु के पाकयज्ञ से एक युवती का उत्पन्न होना) सोऽर्चच्छ्राम्यंश्चचार प्रजाकामः। तत्रापि पाकयज्ञेनेजे स घृतं दधिमस्त्वामिक्षामित्यप्सु जुहुवांचकार। ततः संवसरे योषित्संबभूव सा ह पिब्दमानेवोदेयाथ तस्मै ह स्म घृतं पदे सन्तिष्ठते तया मित्रावरुणौ सञ्जग्माते।

अनुवाद- प्रजा की उत्पत्ति की कामना से मनु पूजन एवं तपस्या करने लगे। इन (पूजन आदि के

समय) में उन्होंने पाकयज्ञ का यजन किया। उन्होंने घृत, दधि, मस्तु एवं आमिक्षा की जल में आहुति दी। उस (पाकयज्ञ) से एक वर्ष में एक युवती उत्पन्न हुई। वह घी चुआती हुई सी (जल से) प्रगट हुई। (घृत से उत्पन्न होने के कारण) उसके चरणों में घृत विद्यमान था। (तत्पश्चात्) मित्र तथा वरुण- उसके पास आये।

प्रजाकामः- प्रजा की उत्पत्ति की कामना को लेकर मनु ने पूजा एवं तपस्या को करना प्रारम्भ कर दिया। चूँकि मनु अकेले रह गये थे अतएव पुनः मानवी सृष्टि की उत्पत्ति के लिए यह करना आवश्यक था। पाकयज्ञ- यह यज्ञ गृहूयाग्नि में किया जाता है। इसके द्वारा विभिन्न कामनाओं की पूर्ति होती है। यह नित्य एवं नैमित्तिक दो रूपों वाला है। इसकी हवि में दूध एवं दूध से बने पदार्थ तथा अन्न प्रयुक्त होते हैं। बलि वैश्वदेव आदि कर्म इसके अन्तर्गत आते हैं। मनु ने पाकयज्ञ के लिए घी, दही, मट्ठा तथा आमिक्षा (गरम दूध में दही डालने से बना ठोस पदार्थ अर्थात् छेना) का प्रयोग किया। चूँकि उस समय अग्नि का अभाव था, इसलिए मनु ने इनकी आहुति जल में ही कर दी। प्राणिजगत् में केवल मनु ही बचे थे अतः उपर्युक्त होम द्रव्यों का भी अभाव रहा होगा। लगता है भनु ने उक्त दल्यों का मानस-संकल्प के द्वारा ही जल में आहुति की थी। पिब्दमाना इव- चूँकि उसकी उत्पत्ति घी से हुई थी इसलिए वह भी से सराबोर एवं चिकनी रही होगी। मनु ने वर्षपर्यन्त घी आदि पदार्थों की जल में आहुति किया था, जिसके फलस्वरूप वह चिकनाई से युक्त होकर जल से प्रगट हुई। प्रो0 एग्लिंग ने 'पूर्ण घनीभूत होकर अर्थ किया है। चूँकि इडा को 'मानवी, घृतपदी, मैत्रावरुणी' के अभियानों से निगद वाक्यों में व्यक्त किया गया है, इसलिए यह इतिहास उसकी सार्थकता को सिद्ध करता हैं। मनु के द्वारा उत्पन्न की गयी युवती मानवी है, घृतपदी है तथा मित्र एवं वरुण से मिलने के कारण मैत्रावरुणी भी है।

अष्टमी कण्डिका

मित्र एवं वरुण का युवती से वार्तालाप) तां होचतुः कासीति। मनोर्दुहितेति। आवयोर्ब्रूष्वेति। नेति होवाच य एवं मामजीजनत तस्यैवाहमस्मीति। तस्यामपि त्वमीषाते तद्वा जज्ञौ तद्वा न जज्ञावति त्वेवयाय सा मनुमाजगाम।

अनुवाद- उससे उन दोनों ने कहा- तुम कौन हो। (उसने कहा) मनु की पुत्री हूँ। (उन्होंने कहा) हमारी हो, ऐसा कहो। (उसने) कहा-नहीं। जिसने उत्पन्न किया है मैं उसकी हूँ। उसमें भी उन दोनों ने अपना भाग माँगा। वह आधा सहमत हुई, आधा सहमत नहीं हुई। उन्हें छोड़कर वह आगे बढ़ गयी और मनु पास आ गयी।

मनोर्दुहिता- मनुं के द्वारा किये गये यज्ञ से उत्पन्न होने के कारण वह युवती मनु की पुत्री कहलायी। मित्र एवं वरुण ये दोनों देवता भी उसे अपनी पुत्री कहलाना चाहते थे पर वह पूर्णतया सहमत नहीं हुई। तद्वा जज्ञौ तद्वा न जज्ञौ - उस युवती के द्वारा श्मनु की पुत्री हूँश् ऐसा कह चुकने पर भी मित्र एवं वरुण ने उसमें पुत्री के रूप में अपना भाग माँगा अर्थात् आग्रह किया कि वह उनकी पुत्री बन जाय पर उन्हें सफलता नहीं मिली। क्योंकि उसने कुछ स्वीकृति दी और कुछ नहीं दी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इडा जितनी मैत्रावरुणी (मित्र एवं वरुण की पुत्री) कहलाती है वह स्वीकृति वाला भाग है पर जहाँ मित्र एवं वरुण को इडा का भाग नहीं मिलता है वह अस्वीकृति वाला है।

नवमी कण्डिका

तां ह मनुरुवाच कासीति। तव दुहितेति। कथं भगवति मम दुहितेति। या अमूरप्स्वाहुतीरहौषीर्धृतं दधि मस्त्वामिक्षां ततो मामजीजनथाः साशीरस्मि तां मा यज्ञे

ऽवकल्पय। यज्ञे चेद्वै मावकल्पयिष्यसि बहुः प्रजया पशुभिर्भविष्यसि। यामु मया का चाशिषमाशासिष्यसे सा ते सर्वा समर्थिष्यत इति तामेतन्मध्ये यज्ञस्यावाकल्पयन्मध्यं होतयज्ञस्य यदन्तरा प्रयाजानुयाजान्।

अनुवाद- उस युवती से मनु ने कहा- कौन हो? (उसने उत्तर दिया) तुम्हारी पुत्री। (मनु ने पुनः कहा) हे देवि! तुम मेरी पुत्री कैसे हो? (उसने कहा) तुमने घृत, दधि, मस्तु एवं आमिक्षा की जिन आहुतियों को जल में दिया है, उनसे ही मुझे उत्पन्न किया है। मैं आशीः (कल्याण-स्वरूपा) हूँ। मेरा यज्ञ में प्रयोग करो। यदि मेरा यज्ञ में प्रयोग करोगे तो बहुत सी प्रजाओं एवं पशुओं से समृद्ध हो जाओगे। मुझसे जो भी आशीः (सौभाग्य) मांगोगे वह सब तुम्हे प्राप्त होगा। उन्होंने उसका यज्ञ के मध्य में (प्रयाज एवं अनुयाज आहुतियों के बीच में) प्रयोग किया। प्रयाज एवं अनुयाज आहुतियों के बीच का अन्तर ही यज्ञ का मध्य है।

प्रलय के पश्चात् उस निर्जन स्थान अपने समीप आयी उस युवती को देखकर मनु का आश्चर्यचकित हो जाना स्वाभाविक है। उसका परिचय प्राप्तकर उसके द्वारा बतलायी गयी विधि के अनुसार उन्होंने प्रयाज एवं अनुयाज आहुतियों के मध् य में उसका प्रयोग किया। यही यज्ञ का मध्यवर्ती भाग होता है। उस ऐश्वर्य की देवी के द्वारा मनु का अभिप्राय जान लिया गया था, उसकी पूर्ति कराने के लिए ही वह मनु के पास आयी थी। प्रयाज- मुख्य आहुति के रूप में जिसके द्वारा देवताओं के लिए प्रकृष्ट रूप से यजन किया जाता है, उसे प्रयाज कहते हैं। प्रायः इनकी संख्या 5 है। अनुयाज- प्रधान याग के अनन्तर किया। जाने वाला याग अनुयाज कहलाता है। प्रायः इनकी संख्या 3 कही गयी है।

दशमी कण्डिका

तयार्च्चच्छ्राम्यंश्चचार प्रजाकामः। तयेमां प्रजातिं प्रजज्ञे येयं मनोः प्रजातिर्याम्वेनया कां चाशिषमाशास्त सास्मै सर्वा समार्थ्यत।

अनुवाद- उसके साथ मनु प्रजा की कामना से पूजन एवं तपस्या करते रहे। उसके माध्यम से उन्होंने इस सम्पूर्ण प्रजाति को उत्पन्न किया, जिसे मनु की प्रजाति कहा जाता है। और जिस किसी सौभाग्य को पाना चाहा, उसके द्वारा उन सभी को प्राप्त किया।

2.4 मनु-मत्स्य संवाद का प्रतिपाद्य

सृष्टि-प्रकिया-शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में, ब्रह्म के दो रूप थे-मूर्त्त और अमूर्त। इन्हें 'यत्' और 'त्यत्' अर्थात् सत् तथा असत् कहा जा सकता है है वाय ब्रह्मणो सपे मूर्त चैवामूर्तम् स्थितं च यस्य सच्च त्यच्च.... (14.1.3.1)। यज्ञा। विश्वसृष्टि का मूलहेतु है। यज्ञ में ही प्रजाऐं उत्पन्न हुई, जिनसे सृष्टि का विकास होता रहा- 'यज्ञाद्वै प्रजाः यज्ञात्प्रजायमाना मिथुना प्रजायन्ते.. अन्ततो यज्ञस्येमाः प्रजाः प्रजायन्त (1.6.1.5)। सृष्टि-कर्ता प्रजापति यज्ञ हैं। मनु-मत्स्य- प्रकरण में प्रलय के अनन्तर मनु के द्वारा जल एवं आमिक्षा से सम्पादित यज्ञ से एक सुन्दर स्त्री की उत्पत्ति बतलाई गई है। इस प्रकार यज्ञ विश्व की नाभिस्थली है। अभिप्राय यह कि सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र ब्रह्म की सत्ता थी और तदनन्तर प्रजापति की प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत् (6.1.3.1)। इस बिन्दु पर शतपथ का अन्य ब्राह्मणग्रन्थों से पूर्ण साहमत्य दिखता है। आगे प्रजापति के अजायमान तथा विजायमान (निरुक्त तथा अनिरुक्त) रूपों का उल्लेख है- **'उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च, परिमितश्चापरिमितश्च'** (14.1.2.18)।

प्रजापति की उत्पत्ति जल में तैरते हुए हिरण्यमय अण्ड से मानी गई है-

शतपथ ब्राह्मण 1/8 मनु-मत्स्य आख्यान के आधार पर सृष्टि-रचना

तस्माबाहुर्हिरण्यमयः प्रजापतिरिति' - (10.1.4.6)
'आपो ह वा इदमग्रसलिलमेवास संवत्सरे हि प्रजापतिरजायत। - (11.1.6.-2)

शनैः शनैः प्रजापति के श्रम एवं तप से सृष्टि-प्रक्रिया आगे बढ़ी- 'प्रजापतिर्हवा इदमग्र एक एवास। स ऐक्षत कथं नु प्रजायेय इति सोऽश्राम्यत, स तपोऽतप्यत' (2.2.2.1)। भुवनों में सर्वप्रथम पृथ्वी की रचना हुई 'इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा' (14.1.2.10)। इसके पश्चात् हिलती हुई पृथिवी के दृढीकरण, शर्करासम्भरण (कंकड़ों की स्थापना फेन-सृजन, मृत्तिका सृजन, पशु-सृष्टि, औषधियों एवं वनस्पतियों की सृष्टि, अन्य लोकों की सृष्टि, संवत्सरादि की सृष्टि, विभिन्न वेदों और छन्दों के आविर्भाव का शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है।

2.5 मनु-मत्स्य संवाद एवं सृष्टि रचना

विश्व एक स्व पोषक प्रकिया तथा पुनरावर्तन प्रकिया है। इसमे कई तत्त्व सम्मिलित हैं।-

"यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वम् जायत।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत् एतद्वैतत्।।"

अर्थात् हिरण्यगर्भ जो जल से उपलक्ष्य पाँचो महाभूत से पहले ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुए थे, वे अपने ही संकल्प रूप से तप के द्वारा प्रकट होने वाले और सब जीवो के हृदयरूपी गुहा में प्रविष्ट होकर उनके साथ रहने वाले परमेश्वर को इस प्रकार जानता है कि, अन्तर्यामी परमेश्वर एक ही है, वही सब कुछ जानता है।

श्वेताश्वरोपनिषद् में सृष्टि-रचना के लिये काल की भूमिका के बारे में कहा गया है कि-

"कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुषः इति चिन्त्य संयोग एषां न त्वात्मभावादत्माप्य नीशः सुख दुःखेहतो।"

सामान्य अनुभव से भी यह सिद्ध होता है कि वस्तुओं की उतपत्ति किसी न किसी काल में ही होती है। इसी तथ्य पर शतपथ ब्राह्मण का जलप्लावन आख्यान हमारा ध्यान ले जाता है। इस सृष्टि के रचनाकार न तो जड़ पदार्थ हैं और न ही जीवात्मा।

जब-जब यह जगत परमेश्वर से उत्पन्न होता है तब-तब सृष्टि की उत्पत्ति एक ही प्रकार से हो ऐसा कोई नियम नहीं है। जड़ वस्तुओं से निर्मित यह जगत स्वतन्त्र कार्य करने में सक्षम नहीं है। वस्तुओं के मेल से जब भी कोई नई वस्तु उत्पन्न होती है वह किसी न किसी संचालक चेतना के अधीन ही होती है। यह जगत नियम पूर्वक चल रहा है ब्रह्म ही पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश इन पाँचो महाभूत पर शासन करते हुए इन भूतों को अपना अपना कार्य करने की शक्ति दे कर उनसे कार्य करवाते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद (1/2/2) में यह लिखा है-

"आपो वा अर्कस्तद्यदपा ॐ शर आसीत्समहन्यत सा पृथिव्यभवत्तस्यामश्रभ्यत्तस्य सा पृथिव्यभवत्तस्यामश्राभ्यत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य तेजोरसो निरवर्ततााग्नि।"

आप (जल) ही अर्क है। उस जल का जो स्थूल भाग है, वह एकत्रित हो गया और वही पृथ्वी बनकर उस जड़ प्रजापति के शरीर से उसके सारभूत अग्नि के रूप में प्रकट हुआ।

यह जान लेना आवश्यक है कि सृष्टि विधान के सिद्धान्त में सृष्टि रचना के लिए किसी और की अथवा उस विधाता की स्थिति की आवश्यकता नहीं बताई गई है। इसमें सृष्टि के उद्भव और विकास का दृष्टिकोण नैसर्गिक है जिस प्रकार से ग्रीक दार्शनिक थेलीज ने इस विश्व की मूल सत्ता जल को माना था उसी प्रकार बृहदारण्यकोपनिषद् तथा शतपथ ब्राह्मण के इस आख्यान के द्वारा हम जगत के विकास में जल तत्त्व की प्रमुखता को देखते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जल को सम्पूर्ण जगत की वस्तु-सत्ता का मूल कारण मानने में बृहदारण्यकोपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण का मनु-मत्स्य संवाद और ग्रीक दार्शनिक थेलीज के सृष्टिविषयक सिद्धान्त समान प्रतीत होते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों का भी मानना है कि जीवन की उत्पत्ति जल से ही हुई है। आधुनिक सृष्टि के सर्वप्रथम एक कोशकीय जीव की उत्पत्ति भी जल में ही हुई। उसके बाद क्रमश: द्विकोशकीय एवं बहुकोशकीय जीवों की उत्पत्ति हुई। इसे और सरल ढंग से इस प्रकार कहा जाय तो हम देखते हैं कि सर्वप्रथम जलचर उत्पन्न हुए और सृष्टि के विकासक्रम इसके बाद उभयचर, थलचर आदि विकसित हुये हैं। इस कथा के दो प्रमुख पात्र झष (मत्स्य) और मनु क्रमश: उभयचर और थलचर के प्रतीकस्वरूप हैं। शेष अन्य सृष्टि जलप्लावन के पश्चात् मनु द्वारा संचित अन्नाद्यों (वनस्पतियों के संचित बीज) द्वारा किये गये यज्ञकर्म द्वारा विकसित हुई।

अत: सृष्टि में जितने भी जैवीयतत्त्व हैं उनकी उत्पत्ति में क्रमश: और सापेक्षिक रूप में जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश एवं वायु के साथ प्राण अथवा चेतनसत्ता एवं काल की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

2.6 मनु-मत्स्य संवाद का वैशिष्ट्य

यज्ञ के इडाकर्म में प्रयुक्त होने वाली इडा की उत्पत्ति को बतलाने के लिए ही यह इतिहास प्रवर्तित हुआ है। मनु के द्वारा उत्पन्न की गयी इडा ने मनु को पुनः ऐश्वर्य प्रदान किया था। इसलिए इस कर्म को करने वाला भी ऐश्वर्य युक्त बनता है। इस तथ्य को एक आख्यान के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

कालांतर में परिभाषाओं की व्याख्या ठीक ढंग से न हो पाने से वैदिक कालीन गूढ़ शब्दों का प्रयोग अन्य अर्थों में होने लगा ऐसी परिस्थिति में उन वैदिक परिभाषिक शब्दों का अर्थ करना और उनके मूल में निहित भाव को समझना अत्यंत कठिन हो गया। शब्दों के सही अर्थ निर्धारण का कार्य कोषग्रन्थ लिखकर किये जाने लगे। किन्तु कोषकारों ने जो अर्थ दिए हैं उससे भी कभी-कभी मन्त्रों के पूर्ण समीचीन अर्थ प्राप्त नहीं होते क्योंकि उसके स्वरूप-बोध सम्बन्धी कथनों में सामंजस्य का अभाव होने लगता है इसीलिए मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा प्रयुक्त परिभाषिक पदों के वास्तविक अर्थ ज्ञात करना कठिन हो जाता है। किन्तु इस समस्या का एक समाधान हमें वैदिक वांङ्मय में ही प्राप्त हो जात है। इनको समझने का वास्तविक आधार विशाल ब्राम्हण साहित्य भी है। इस सन्दर्भ में वेद के भाष्यकार व्यंकट माधव ने स्पष्ट रूप से कहा है कि निरुक्त व्याकरण आदि के आधार पर जो वेद मन्त्रों की व्याख्या करते हैं वे वेद के सम्पूर्ण अर्थ को न कर चतुर्थांश ही करते हैं किन्तु जो ब्राह्मणों के आधार पर वेद मन्त्रों की व्याख्या करते हैं वह उसके सम्पूर्ण भाव को व्यक्त करते हैं अर्थात् वेद विज्ञान अथवा सृष्टि विज्ञान को सही रूप में समझने हेतु ब्राह्मण ग्रंथ कुंजी रूप है ब्राह्मण ग्रंथों में सृष्टि विषयक चिंतन को व्याख्यान आदि के माध्यम से बोधगम्य बनाया गया है। शतपथ ब्राह्मण का मनु-मत्स्य संवाद सृष्टि उत्पत्ति के वैदिक सिद्धान्तों को रोचक कथात्मक शैली में प्रस्तुत करता है।

2.7 अन्य साहित्यों में जलप्लावन आख्यान

बाइबिल की उत्पत्ति खंड के अध्याय 6 में भी जल प्रलय का वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु बाइबिल में वर्णित जल प्रलय का स्वरूप वैदिक जलप्लावन से भिन्न रूप में प्राप्त होता है। यहोवा ने देखा कि मनुष्यों की बुराई पृथ्वी पर बढ़ गई है और उनके मन में बुराइयां बढ़ती जा रही हैं। यह देखकर यहोवा के मन में पश्चाताप हुआ और वह मन में खेदित हुआ सो यहोवा ने सोचा कि मनुष्य को जिसे मैंने रचा है पृथ्वी के ऊपर से मिटा दूंगा मनुष्य के साथ.साथ जंतु पशु तथा रहने वाले जंतु सभी को मिटा दूंगा क्योंकि मैं उनके बनाने से पछताता हूं परन्तु यहोवा की अनुग्रह की दृष्टि नूह पर बनी रही नूह एक धर्मी व्यक्ति था यहोवा ने नूह को सचेत किया कि वह जल प्रलय करने वाला है और नूह को सलाह दिया की वह एक बड़ी सी नाव बना लें और उसमें सभी जीव जंतु के प्रतिनिधि को भी उस में भर ले यह सभी तुम्हारे काम आएंगे परमेश्वर की आज्ञा से नूह ने ऐसा ही किया जल प्रलय आया तो जहाज पर नूह और नूह के साथ के जीव जंतु बच्चे तथा पृथ्वी के अन्य सभी प्रलय में समा गए।

इसी प्रकार की एक कथा लिखित रूप में ई.पू. 2100 में बेबीलोनियन साहित्य में निम्नवत प्राप्त होती है- जब ईश्वर के रचे हुए मानवों ने उनकी उपासना तथा उनको बलि देने में लापरवाही बरती तब क्रुद्ध देवताओं ने धरती पर मानवजाति तथा जीवन को नष्ट करके जलप्लावन कर दिया। तदापि कुछ अच्छे देवताओं ने मानव सन्तान, पशु-पक्षी, वृक्ष-अन्न आदि को बचा लिया।

प्राचीन मेसोपोटामिआ में सुमेर की राजधानी शुरूपाक में दजला नदी के तट पर देवता और मानुष साथ-साथ रहते थे क्रमशः देव मन्दिरों की मिट्टी के घरों में ही स्थापना थी। देवताओं के अधिपति एनलिल की मनुष्यों की घनी आबादी, शोर-शराबे से नाराजगी बढ़ती गयी। अतः उन्हें विनष्ट करने को उसने वर्षा देवता अदाद को रात-दिन लगातार धुआँधार वर्षा का आदेश दिया ताकि भयंकर बाढ़ में मानवजाति व सृष्टि समाप्त हो जाए। देवताओं में से इज मानवजाति से प्रेम करता था। उसने शुरूपाक के सम्राट उतानपिश्तिम से अनुरोध किया कि सृष्टि को बचाने के निमित्त वे एक विशाल नौका का निर्माण करें। अतः वृत्तचाप की शक्ल की एक विशाल काष्ठ-नौका बनाई गयी ताकि उसमें वे सभी सुरक्षित तैर कर पार हो जाएँ। बाढ़ आने पर धरती तथा पूरा ब्रह्मांड अन्धकार में डूब गया। सातवें दिन के बाद प्रलय शान्त हुआ। महानीका एक स्थान पर आकर धमी निसिर पर्वत के शिखर पर एनलिन ने उतानपिश्तिम दम्पति से नये मन्वन्तर को शुरू करने का वरदान लिया। उन्हें अमरता भी दी। नोह की विशाल नौका तथा महामत्स्व द्वारा मनु की नौका का उद्धार भी जलप्रलय की मिथक के ही अन्य संस्करण हैं। इन्हें हम वैश्विक अन्तकुंडन की प्रक्रिया में संयुक्त कर सकते हैं। मेसोपोटामिआई मिथकयान में अथाह जलराशि मीठे तथा खारे खंडों में बंटी थी। निनवेह के शहर बेबीलॉन में खारे जल की 'अधिष्ठात्री मातृदेवी तियामत तथा मीठे जल के अधिष्ठाता पितृदेव आप्सू थे। ये दम्पति थे। इनकी अगली सन्तति-धारा भाई-बहनों की हुई जो पति-पत्नी भी बने। तीन-चार भाई-बहन वाली दम्पति-पीढ़ी में महाभारत छिड़ा। इआ ने अपनी बहन दामकिना से विवाह किया, मीठे जल पर कब्ज़ा कर लिया तथा हँसी-खुशी से रहते हुए मार्दुक नामक शक्तिशाली अधिनेता को पैदा किया।

2.8 सारांश

प्रिय छात्रों आप ने मनु-मत्स्य संवाद का मुख्य प्रतिपाद्य पढ़ लिया है। इस संवाद को सारांश रूप में हम निम्नवत समझ सकते हैं।

यह संवाद आख्यान रूप में सृष्टि में साथ-साथ होने वाली दो प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। सृष्टि पाँच महाभूतों से बनी हुई है और प्रलय की अवस्था में स्थूल जगत धीरे-धीरे सूक्ष्मरूप में तथा पाँचो महाभूत एक दूसरे में समाहित होते जाते है तथा एक नए सृष्टिक्रम का प्रदुर्भाव होता है। जलप्लावन आख्यान जल तत्त्व में पृथ्वी तत्त्व के समाहित होने की बात आपके समक्ष रखता है। पुनः इस प्लावन के बाद एक नवीन सृष्टि उसी जल में से प्रादुर्भूत होती है। यह आख्यान हमें यह भी शिक्षा देता है कि सृष्टि में विकास और प्रलय की अवस्था में एक चेतन सत्ता साक्षी रूप में रहती है जो इस प्रक्रिया में भाग लेते हुए भी इस प्रक्रिया में सृजन का एक कारक बनता है। मनु इसी चेतन साक्षी के प्रतीक हैं।

जीवन में ही नहीं सृष्टि के उद्भव एवं पुनःनिर्माण जैसे बड़े भौतिक परिवर्तन में भी चेतन सत्ता की मूमिका होती है। यही इस संवाद का मुख्य सन्देश है। साथ ही यह भी सन्देश देता है कि प्रकृति में प्रत्येक जीव के जीवन की रक्षा में एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। आख्यान में मनु ने मछली की और पुनः मछली द्वारा मनु की रक्षा उसी तथ्य पर बल देते हुए प्रतीत हो रहे हैं। प्रलय की समाप्ति पर मनु ने अन्नाद्यों (वनस्पतियों के संचित बीज) से यज्ञ प्रारम्भ किया। तब संवत्सर के अन्त में मनु के समक्ष इड़ा नामक स्त्री प्रकट हुई, और इसके पश्चात् मानवी सभ्यता आगे बढ़ी। इस कथा की पुनरावृत्ति सर्वात्रिक रूप से हुई है।

2.9 शब्दावली

ह वै = दोनों निपात हैं, प्राचीनता बतलाने के लिए ब्राह्मणशैली के गद्य में प्रयुक्त होते हैं। अवनेजनाय = धोने के लिए। बिभृहि = धारण करिए अथवा पालन करिए। औघः = विशाल जलराशि। निर्वोढा = बहा ले जायेगी अर्थात् देशान्तर में पहुँचा देगी। नाष्ट्रा = संकट, विपत्तियाँ। मत्स्य एव मत्स्यं गिलति = बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है (इसे ही मत्स्य न्याय कहा जाता है)। कर्पू = गढ्ढा अथवा खन्ती। अतिनाष्ट्रः = विपत्ति से परे। झष = बड़ा मत्स्य। समवायात् = नीचे उतरे, कम हो, घटे। मनोरवसर्पणं = मनोरवसर्पण अर्थात् मनु के उतरने का मार्ग। श्राम्यम् = तपस्या। ईजे = यजन किया। आमिक्षा = दूध एवं दधि का मिश्रण। अणु = जल में। जुहुवांचकार = आहुति किया। योषित् = युवती। ईषाते = हमारा भाग दो। आशीः = कल्याणस्वरूपा। अवकल्पय = प्रयोग करो। प्रयाजानुयाजान् = प्रयाज तथा अनुयाज आहुतियों के। प्रजाकामः = प्रजा की उत्पत्ति की कामना वाले मनु।

2.10 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. शतपथ ब्राह्मण (विज्ञान-भाष्य) पं0 मोतीलाल शर्मा, राजस्थान वैदिक तत्व शोध संस्थान, मानवाश्रम, जयपुर
2. वेबर द्वारा सम्पादित पुनर्मुद्रण चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
3. संस्कृत वाङ्मय का वृहद इतिहास, प्रथम खण्ड, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1996

4. सायण-भाष्य (वेदार्थप्रकाश) तथा हरिस्वामी की टीका सहित सम्पूर्ण माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1940
5. शतपथ ब्राह्मण (हिन्दी अनुवाद), पं0 गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन-अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली, 1967

2.11 बोध प्रश्न

1. मनु-मत्स्य संवाद की कथा अपने शब्दों में लिखिये।
2. जलप्लावन आख्यान किस प्रकार से सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त से सम्बन्धित है? स्पष्ट करें।
3. प्राचीन विश्व साहित्य में उपलब्ध जलप्लावन सम्बन्धी कथाओं तथा शतपथ ब्राह्मण के मनु-मत्स्य संवाद का परस्पर क्या सम्बन्ध है?
4. मनु-मत्स्य संवाद वैदिक सृष्टि सम्बन्धी सिद्धान्त की कथात्मक अभिव्यक्ति है, स्पष्ट करें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 शतपथब्राह्मण - वाङ्मनस् संवाद का प्रतिपाद्य एवं वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 शतपथ ब्राह्मण परिचय

3.3 संवाद परम्परा

3.4 वाङ्मनस् संवाद

3.5 वाङ्मनस् संवाद का प्रतिपाद्य

3.6 वाणी तथा मन सम्बन्धी अन्य विचार

3.6.1 मन और वाणी की उत्पत्ति

3.6.2 वाणी के प्रकार एवं उसकी प्रक्रिया

3.7 वाङ्मनस् संवाद का वैशिष्ट्य

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.11 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

3.12 बोध प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. वाङ्मनस् संवाद का आप परिचय एवं निहितार्थ जान सकेंगे।
2. वाक् और मन के परस्पर सम्बन्धों को जान सकेंगे।
3. वाणी और मन के स्वरूप एवं उनकी उत्पत्ति को जान सकेंगे।
4. यह भी स्पष्ट होगा कि विषयों की अभिव्यक्ति दृष्टि से वाक् महत्त्वपूर्ण है और और मन अभिव्यक्ति की विषयवस्तु का उद्गम है।

3.1 प्रस्तावना

शतपथ ब्राह्मण **(1/4/5/8-13)** प्रथम कण्डिका के चतुर्थ अध्याय के पंचम ब्राह्मण के आठ से तेरहवें मन्त्र में अपनी-अपनी प्रधानता के विषय में वाणी और मन का सम्वाद प्रारम्भ होता है। इनके संवाद को अत्यन्त ललित-शैली में हेतुकल्पना मूलक उपाख्यान के रूप में प्रस्तुत किया

गया है। इसे ही वाङ्नस् संवाद कहा जाता है। इसमें मन एवं वाणी के बीच वार्तालाप होता है। इस संवाद में अपने-अपने बड़प्पन के विषय में विवाद होता है। दोनों झगड़े के निपटारे के लिए प्रजापति के पास गये। प्रजापति ने मन के पक्ष में निर्णय दिया जिससे वाणी हतोत्साहित हो गई और उसका गर्भपात हो गया। अपने विरुद्ध इस निर्णय को सुन कर उसने प्रजापति से कहा कि अब मैं तुम्हारे (प्रजापति के) लिए हवि नहीं ले जाऊंगी, क्योंकि आपने मेरे विरुद्ध निर्णय दिया है। अतः यज्ञ में प्रजापति के निमित्त जो कुछ भी किया जाता है वह निम्न स्वर में किया जाता है। देवताओं ने वाणी के गर्भ को एक चमड़े में या अन्य किसी पात्र में भर लिया। वे पूछते थे कि क्या वह इसी में है तब उसी से अत्रि उत्पन्न हुये। इस इकाई में हम इसी वाङ्नस् संवाद का अध्ययन करेंगे।

3.2 शतपथ ब्राह्मण परिचय

शुक्ल यजुर्वेद का यह एकमात्र ब्राह्मण है। इसके दो पाठ प्राप्त होते हैं- (क) माध्यन्दिन-शाखीय। इसमें 14 काण्ड और 100 अध्याय हैं। 100 अध्यायों के कारण ही इसका नाम शतपथ पड़ा- **"शतं पन्थानो मार्गा नामाध्याया यस्य तत् शतपथम्।"** (ख) कण्वशाखीय। इसमें 1 काण्ड और 104 अध्याय हैं। शतपथ ब्राह्मण के रचयिता याज्ञवल्क्य ऋषि माने जाते हैं। इसके प्रारम्भिक 9 काण्डों में शुक्ल यजुर्वेद के 18 अध्यायों की व्याख्या है। इसमें दर्श-पौर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, वाजपेय, राजसूय, अग्निरहस्य, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध आदि का विस्तृत वर्णन है। इसमें पुरुरवा-उर्वशी, दुष्यन्तपुत्र भरत, मत्स्य, जल-प्लावन तथा मनु की कथाएँ हैं। इसमें सर्वप्रथम सांख्य के आचार्य आसुरि तथा पाण्डव राजा जनमेजय का उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में प्राप्त पारिभाषिक शब्द अर्हत्, श्रमण और प्रतिबुद्ध का सर्वप्रथम प्रयोग इसी ग्रन्थ में है। इसकी शैली सरस, सरल, प्रसाद, गुण-युक्त और प्रभावशाली है।

3.3 संवाद पराम्परा

'वद्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर 'वाद' शब्द बनता है, जिसका सामान्य अर्थ बोलना या कहना होता है। श्रीमद्भगवद्गीता (10/32) में श्रीकृष्ण कहते हैं- **'वादः प्रवदतामहम्।'** अर्थात् बातचीत करने वाले के बीच में मैं वाद हूँ, जो बातचीत का सबसे उत्तम रूप है। इसी 'वाद' शब्द में 'सम्' उपसर्ग जोड़ने पर 'संवाद' बनता है । **"सम्यक् वादः संवादः"** अर्थात् तत्त्वजिज्ञासा हेतु जो सम्यक् वार्तालाप किया जाये वही संवाद है। वैदिक वाङ्मय में अनेक संवाद प्राप्त होते हैं; न केवल वैदिक वाङ्मय में बल्कि सम्पूर्ण शैवागम साहित्य संवाद शैली में ही रचा गया है। इसमें शिव-पार्वती का संवाद है। पार्वती अपनी जिज्ञासा के सामाधान हेतु प्रश्न करती हैं और उनकी शङ्काओं के समाधान में शिव उत्तर देते हैं। महाभारत में संवाद शब्द का प्रयोग दो विचारकों में पारस्परिक बौद्धिक विमर्श के लिए बार-बार आया है। प्राचीन मनीषियों के द्वारा किये गयो संवादों की स्मृतियों से इतिहास बनता है। महाभारत, अर्थशास्त्र, कामसूत्र, काव्य मीमांसा आदि ग्रन्थ संवाद शैली के ही उदाहरण हैं। श्रीमद्भगवद्गीता (18/76) में श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य हुए संवाद को अद्भुतसंवाद कहा गया है- **"राजनसंस्मृत्य संस्मृत्य सम्वादमिममद्भुतम्।"**

विद्वानों का मत है- तत्त्वनिर्णय के लिए वादी और प्रतिपवादी के मध्य जो विचार विनिमय होता है, उसे वाद कहते हैं। तर्कभाषा में कहा भी गया है- **"तत्त्वबुभुत्सोः कथा वादः।"** वाद में स्वपक्ष का समर्थन किया जाता है। इसका उद्देश्य यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति अथवा तत्त्वबोध है।

कहा भी गया है- **"वादे-वादे जायते तत्त्वबोध:।**" उपनिषदों में संवाद के सोपान हैं- प्रश्न, अनुप्रश्न, अनतिप्रश्न या प्रश्नातिरेकनिवारण, व्याख्या, अनुव्याख्या, दृष्टान्त, आख्यायिका तथा उर्ध्वप्रवचन।

सृष्टि के आरम्भ से ही वाद तथा संवाद दो परम लोकापकारक तत्त्वों की मानव जाति के विकास और संस्कृति के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी अपनी पुस्तक 'संवादोपनिषद्' में पृ.-1 पर लिखते हैं कि, "उपनिषद् के साक्ष्य से तो यह भी कहा जा सकता है कि सृष्टि का उद्भव ही वाद संवाद से हुआ है। मनुष्य अकेला होता है, तभी तक वाद नहीं हो सकता। बृहदारण्यक उपनिषद् में सृष्टि कैसे हुई इस पर विचार करते हुए कहा गया है- सृष्टि के आरम्भ में परम पुरुष अकेला था। अकेला वह रम नहीं सकता था। तब परमपुरुष ने (वाद और संवाद के लिए) अपने को दो में विभाजित कर दिया। यहीं से सृष्टि को आरम्भ हुआ और उसके साथ ही वाद और संवाद का भी।" न्यायसूत्र में कथा (बातचीत) के तीन प्रकार वर्णित हैं- वाद (बौद्धिक विमर्श के साथ बातचीत), जल्प (बहस) और वितण्डा (एकपक्षीय बहस)। शंकराचार्य गीता के अपने भाष्य में कहते हैं कि, कथा के तीनों प्रकारों में वाद सर्वोत्कृष्ट है, तभी कृष्ण ने उसे अपनी विभूति बताया है और वाद की उत्कृष्टता का कारण दिया है कि- वाद अनिवार्यत: संवाद में परिणत होता है। न्याय दर्शन (न्यासूत्र-4/47) के प्रणेता गौतम तो ज्ञानियों के साथ संवाद को अपवर्ग अर्थात् मोक्ष का साधन मानते हैं। और कहतें हैं कि संवाद वाद का मानदण्ड है। न्यायसूत्र (4/2/47) की व्याख्या में भाष्यकार वात्स्यायन कहते हैं कि, संवाद कथा का वह रूप है, जो तत्त्वबुभुत्सा के लिए आरम्भ किया जाता है।

3.4 वाङ्मनस् संवाद

वाङ्मनस् संवाद को यहाँ मूलरूप में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है-

अथाऽतो मनश्चैवव वाचश्च।
अहं भद्रऽउदितं मनश्च ह वै वाक्चाऽहं भद्रऽऊदाते।।8।।

एक बार मन और वाणी अपनी-अपनी श्रेष्ठता के विषय में परस्पर विवाद करने लगे।

"तद्ध मन उवाच। अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि न वै मया त्वं किञ्च नाऽनभिगतं वदसि सा यन्मम त्वं कृताऽनुकराऽनुवर्त्माऽस्यहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मीति।।9।।"

इस विषय में मन ने कहा, मैं तुमसे बड़ा हूँ; क्योंकि तुम मेरे द्वारा न जाना हुआ, कुछ भी नहीं बोलती हो। तुम मेरी अनुगामिनी हो। अतः मैं ही तुमसे श्रेष्ठ हूँ।

"अथ ह वागुवाच। अहमेवत्त्वच्छ्रेयस्यस्मि। यद्वै त्वं वेत्थाऽहं तद्विज्ञपयाम्यहं संज्ञापयामीति।।10।।"

इस पर वाणी ने कहा, मैं ही तुमसे बड़ी हूँ। तुम जो कुछ भी जानते हो, वह मैं ही जानती और बताती हूँ।

"ते प्रजापतिं प्रति प्रश्नमेयतु:। स प्रजापतिर्मनस एवाऽनूवाच मनएव त्वच्छ्रेयो मनसो वै त्वं कृताऽनुकराऽनुवर्त्माऽसि श्रेयसो वै पापीयान्कृताऽनुकरोऽनुवर्त्मा भवति।।11।।"

वे दोनों अपने विवाद को शान्त करने के लिए प्रजापति के पास गये। प्रजापति ने मन के ही

अनुकूल निर्णय दिया। उन्होंने वाणी से कहा कि मन तुमसे बड़ा है। तुम मनोऽनुगामी हो। बड़े का अनुकरण तथा अनुगमन करने वाला निश्चित रूप से उससे छोटा ही होता है।

"सा ह वाक् परोक्ता विसिष्मिये। तस्यै गर्भः पपात सा ह वाक् प्रजापतिमुवाचाऽहव्यवाडेवाऽहं तुभ्यं भूयासं यां मा परावोच इति तस्माद् यत्किञ्च प्राजापत्यं यज्ञे क्रियत उपांश्वेव तत्क्रियतेऽहव्यवाड्ढि वाक् प्रजापतय आसीत्।।12।।"

इसी प्रकार विरुद्ध निर्णय को सुनकर वाणी हतोत्साहित हो गई। उसका गर्भ गिर गया। उसने प्रजापति से कहा कि अच्छा तो यही होगा कि मैं आपके लिए 'हवि' को ले जाने वाली न होऊँ; क्योंकि आपने मेरे विरुद्ध निर्णय दिया है। यही कारण है कि यज्ञ में प्रजापति के लिए जो कुछ भी किया जाता है, वह निम्न स्वर से (उपांशु) किया जाता है। वाणी प्रजापति के लिए हवि का वहन नहीं करती है।

"तद्धैतद् देवाः। रेतश्चर्मन्वा यस्मिन्वा बभ्रुस्तद्ध स्म पृच्छन्त्यत्रैवत्यादिति ततोऽत्रिः सम्बभूव तस्माद् अप्यात्रेय्या योषितैनस्व्येतस्यै हि योषायै वाचो देवतायाः एते सम्भूताः।।13।।"

देवताओं ने वाणी के उस गर्भ को एक चमड़े में या अन्य किसी पात्र में भर लिया। वे पूछते थे कि क्या वह इसी में है, तब उसी से अत्रि पैदा हुए। अतः गलितगर्भा रजस्वला स्त्री को आत्रेयी कहते हैं। उससे सम्पर्क करने वाला पापी होता है। इसी स्त्रीरूपधारिणी वाणी से ये सभी गर्भ पैदा हुए हैं।

3.5 वाङ्मनस् संवाद का प्रतिपाद्य

पं. मोतीलाल शर्मा ने शतपथ ब्राह्मण पर लिखे अपने विज्ञान-भाष्य में वाङ्मनस संवाद की इस प्रकार व्याख्या की है- शतपथ ब्राह्मण के बारहवें उपाख्यान में प्रसंग आता है कि, एक बार मन, और वाक्, दोनों में 'मैं श्रेष्ठ हूँ' इस बात को लेकर विवाद हो गया। वाक् कहने लगी- मैं बड़ी हूँ, मन कहने लगा- मैं बड़ा हूँ। वाक् से अपनी श्रेष्ठत्त्व सिद्ध करने के लिए मन कहने लगा कि, मेरे संकल्पित-भावित अर्थ के अनुरूप ही तुझे चलना पड़ता है। जबकि अपनी श्रेष्ठता बताते हुए वाक् कहने लगी कि, तुम्हारे संकल्प को मैं हीं बाह्य जगत् में मूर्तस्वरूप प्रदान करती हूँ। दोनों अपने इस विवाद को लेकर प्रजापति के पास गए। प्रजापति ने मन का पक्ष लेते हुए यही निर्णय किया कि, 'तुम दोनों में मन ही श्रेष्ठ है'। प्रजापति के इस निर्णय से वाक् का दर्पदलन हो गया, उसका अभिमान विदीर्ण हो गया। परिणामतः अपने इस अपमान से खिन्न वाक् ने यह कह डाला कि, 'हे प्रजापते! आपने मुझे मन से छोटा बतलाया है, अतएव आज से मैं आपके लिए हविद्रव्य का वहन नहीं करूँगी। इस उपाख्यान में उपांशु हवियों के समर्थन में मन एवं वाणी का झगड़ा, हेतु रूप में बताया गया है।

उक्त उपाख्यान से मन, तथा वाक के स्वाभाविक स्वरूपों का ही वर्णन किया गया है। प्राणवाग्गर्भित मनोमय प्रजापति हृदय में प्रतिष्ठित है। इस सम्बन्ध में यजु: संहिता में मन्त्र प्राप्त होता है कि-

"प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा विजायते तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थौ भुवनानि विश्वा।"

अर्थत् सृष्टिकर्ता जीव के गर्भ में विचरण करता है, और जब वह जीव के गर्भ में जन्म लेता है, तो वह कई रूप धारण करता है। यहाँ से- "आत्मा बुद्धया समेत्यर्थानि मनो युङ्क्ते विवक्षया" इत्यादि शिक्षा-सिद्धान्त के अनुसार वायु के सहयोग से वर्णात्मिका (शब्दात्मिका) का उद्गम होता है। मानव ज्ञान ही इसका आधार बनता है। मानस ज्ञान के अनुरूप ही वर्णस्वरूप की निष्पत्ति होती है। फलतः मन इसका जनक है, वाक् इसकी पुत्री है। यही कारण है कि, सुषुप्त्यावस्था में जब मन विज्ञानात्मा (बुद्धि) के साथ मिल कर पुरीतति नाड़ी में चला जाता है, तो वाग्व्यापार अवरुद्ध हो जाता है। मन को आलम्बन बनाए बिना वाग्व्यापार असम्भव है। उधर मन बिना वाक् के (अनुष्टुप-बाग्लक्षणा बैखरीवाक् के) सहयोग के बिना भी (परावाक् के सहयोग से) स्वव्यापार (संकल्प) संचालन में समर्थन हो जाता है।

इन्हीं कतिपय कारणों से निश्चित है कि इन दोनों में वाक् की अपेक्षया मन ही ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ है। 'प्रजापति ने यह निर्णय किया' इस कथन का यही तात्पर्य है कि मन की श्रेष्ठता का कारण उसका हृदयावच्छिन्न प्राजापत्य-धर्म ही है। परिधि, हृदय, दोनों में हृदय ही परिधि का मूलाधार एवं प्रथम प्रवर्तक है। "तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा" के के अनुसार हृदयावच्छिन्न मनोमय अनिरुक्तप्रजापति ही वाङ्मय बहिर मण्डल का प्रवर्तक तथा आधार है। अनुष्टुप वाक् का हृदय से बाहर की ओर ही विकासित होता है। वाक् की बहिर्गति है। फलतः हृदयावच्छिन्न मनोमय प्रजापति को वाग्व्यापार से कभी हव्य नहीं मिल सकता। कैसा महत्वपूर्ण समन्वय है। हमारा जितना भी वाग्व्यापार है, वह सब केवल बाह्य प्रपञ्च का ही उपोद्बलक है। कभी शब्दजाल से आत्मतुष्टि सम्भव नहीं है। क्योंकि पराङ्मुख शब्द की अन्तर्मुख हव्य की प्रजापति की ओर गति ही नहीं है।

पूर्वाधार मनोऽनुगत है, यहाँ वाग्व्यापार प्रकृत्या अवरुद्ध है। अतएव मनोऽनुगत पूर्वाधार उपांशु ही किया जाता है। न केवल मनोनुगत पूर्वाधार ही, अपितु यज्ञ में जितने भी प्राजापत्य कर्म विहित हैं, सब इसी सिद्धान्त के आधार पर उपांशु (यजुष् का धीमे स्वर में उच्चारण अथवा मन्त्र को बुदबुदाना जिसमें शब्दों को बुदबुदाने के लिए एक दृश्य प्रयास किया जाता है, किन्तु कोई ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती एवं बिना विचार शब्दों की आवृत्ति की जाती है) ही किए जाते हैं।

प्रिय छात्रों आपके मन में एक प्रश्न उठ रहा होगा कि वाणी का गर्भ क्या है? आप जानते हैं कि वेदों में सब कुछ यज्ञ और यज्ञ सम्बन्धी तत्त्वों के प्रतिपादन हेतु वर्णित है। यह गर्भ सांकेतिक रूप से यज्ञीय तत्त्वों (ऊष्ण, शीत एवं अनुष्णाशीत रूपी अङ्गिरा, भृगु एवं अत्रि) की उत्पत्ति के विषय में संकेत किया गया है। ऋक्-साम-तत्वों वाले इसी वाक् से (वेदों और शतपथ ब्राह्मण, आदि सिद्धान्त के अनुसार आपोमय परमेष्ठी का प्रादुर्भाव होता है। इस परमेष्ठी में उष्ण, शीत, अनुष्णाशीत-मेद से अङ्गिरा (उष्ण), भृगु (शीत), एवं अत्रि (अनुष्णाशीत), इन तीन 'मनोता' नामक तत्वों का प्रादुर्भाव होता है। इनमें उष्ण अङ्गिरा देवसृष्टि का शीत भृगु पितृसृष्टि का, एवं अनुष्णाशीत अत्रि भूतसृष्टि का प्रवर्तक बनते हैं। भूतसृष्टि धामच्छादा है, स्थानावरोधिनी है (जगह घेरती है)। यह धामच्छदधर्म्म उसी अत्रि का धर्म है। यही वाक् का गर्भ है। इसी गर्भ से यह वाक् हृदय की ओर न जाकर बहिर्मण्डल की ओर अनुगत होती है।

मनः प्राण वाङ्मय आत्मा में मन ज्ञानात्मक बनता हुआ अधामन्द है, प्राण क्रियात्मक बनता हुआ अधामच्छद है। परन्तु वाक् अर्थात्मक बनती हुई धामच्छादा है। अपने अर्थधम्मं से वाक् में तमोगुण का प्राधान्य हो जाता है। यह तमोभाग ही अत्रिभाग है, जो कि वाक् का प्रातिस्विक वीर्य माना गया है। इसी अत्रिलक्षण तमोभाग के समावेश से भूतसर्ग प्रवृत्त हुआ है। ऋतुमती

स्त्री में वागरतोलक्षण इसी धामच्छद अविप्राण का समावेश रहता है। अतएव ऋतुमती स्त्री 'आत्रेयी' कहलाती है। अत्रिभाग तमोगुण प्रधान है, मलीमस है, अतएव रजस्वला स्त्री असच्छूद्रवत् अस्पृश्या मानी गई है। श्रुति कहती है कि, जो आत्रेयी स्त्री का स्पर्श करता है, वह पापाभिभूत हो जाता है।

'चर्म्मन्' शब्द प्राणीलक्षण चेतन भूतसर्ग के लिए प्रयुक्त हुआ है, एवं 'यस्मिन् वा' वाक्य प्राणलक्षण अचेतन भूतसर्ग के लिये प्रयुक्त हुआ है। चेतन भूत एवं अचेतन भूत भूतात्मक उभयविध धामच्छदसर्ग वाक्-गर्भरूप अत्रि से ही समुद्भूत है। प्रकृत में इस अत्रि-मीमांसा से यही निष्कर्ष निकलता है कि, धमच्छद अत्रि के सम्बन्ध से वाक् तत्त्व अर्थप्रधान बनता हुआ बहिर्मुख ही बन जाता है। अर्थातीत हृद्यभाव की ओर इसका अनुगमन अवरुद्ध हो जाता है। इसी अर्थमात्रा से इसका आत्मधर्मानुगत स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो रहा है। यही वाणी का अपमानित होना है। अपमानलक्षणा अर्थगरिमा ही वाणी को प्राजापति की सेवा में पहुँचने से वञ्चित किए हुए है।

3.6 वाणी तथा मन सम्बन्धी अन्य विचार

3.6.1 मन और वाणी की उत्पत्ति

वाणी का मुख्य प्रयोजन यही है कि मुखसे निकले हुए सार्थक वर्णों के माध्यम से कोई भाव या विचार या कथनीय किसी दूसरे को समझाया या बतलाया जाय। वर्त्तमान विदेशी भाषा-शास्त्री मानते हैं कि भीतर की सांस जब हमारे कण्ठ में स्थित स्वरयन्त्र (लेरिक्स) में लगे हुए दो सूक्ष्म कुञ्चनशील तन्तुयों को कँपाती हुई मुँह से निकलती है तब मुख-विवरके भीतर विभिन्न स्थानों पर जिह्वा अटकाने अथवा श्रोष्ठ संकुचित करने या फैलाने अथवा नकियाकर बोलने से जो ध्वनियाँ निकलती हैं उन्हींके सार्थक संव्यूहन से भाषा का निर्माण होता है। किन्तु भारतीय वाग्विज्ञान के अनुसार आत्मा, बुद्धि, मन, अग्नि और वायुके संयोग से वाणी उत्पन्न होती है। भारतीय शिक्षा-शास्त्रियों ने भाषण-प्रक्रिया के सम्बन्ध में बहुत विस्तार के साथ शिक्षा-ग्रन्थों में विचार किया है। महामुनि पाणिनि ने अपनी पाणिनीय शिक्षा में वाणी के निगमन की पूरी प्रक्रिया को समझाते हुए बताया है-

"आत्मा बुद्धधा समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।।
मारुतस्तुरसि चरन् मन्द्र जनयति स्वरम्।

अर्थात् शब्दोच्चारण के पूर्व पहले आत्मा ही बुद्धि के साथ मिलकर अर्थ ग्रहण करता है। तदनन्तर वह मन को बोलने की इच्छा से प्रेरित करता है। तब वक्ता के शरीर की अग्नि पर मन आघात करता है जिसके कारण वायु को अग्नि प्रेरित करती है। वह वायु हृदय-स्थान में पहुँचने पर गम्भीर ध्वनि उत्पन्न करता है। वहाँ से चलकर वह ऊपर उठकर मूर्धा से टक्कर खाकर लौट आता है और मुख-मार्ग से बाहर निकलते हुए विभिन्न प्रकार के वर्ण उत्पन्न करता है। कारण के अनुसार इन वर्णों के पांच भेद माने जाते हैं- 1. स्वरकृत भेद, अर्थात् उदात्त (ऊँचे स्वरसे), अनुदात्त (नीचे या मन्द स्वरसे) और स्वरित (समाहार अर्थात् न बहुत ऊँचे स्वरसे न बहुत नीचे स्वरसे बोलने) के अनुसार भेदय 2. कालकृत भेद, अर्थात् एक स्वरके उच्चारण में लगनेवाले समय के अनुसार भेद, जैसे इ, इऽ, इऽऽ 3. स्थानकृत भेद, अर्थात् मुख के भीतर जिन स्थानों में

वर्ण का उच्चारण होता है उनके अनुसार भेदय 4. आभ्यन्तर प्रयत्नकृत भेद अर्थात् वर्ण उच्चरित करने में मुख के भीतर जीभ के संयोग से जितना प्रयत्न करना पड़े उसके अनुसार भेद तथा 5. बाह्य प्रयत्नकृत भेद, अर्थात् वर्ण को जितनी साँस के साथ ध्वनित करके मुख से बाहर व्यक्त करना पड़े उसके अनुसार भेद।

श्रीमद्भागवत महापुराण (11/24/5-8) में मन की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है-

"तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन् गुणाः। मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च।।
तेभ्यः समभवत् सूत्रं महान् सूत्रेण संयुतः। ततो विकुर्वतो जातोऽहंकारो यो विमोहनः।।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत्। तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः।।
अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च। तैजसाद् देवता आसन्नेकादश च वैकृतात्।।"

उद्धवजी! मैंने ही जीवों के शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार प्रकृति को क्षुब्ध किया। तब उससे सत्त्व, रज और तम- ये तीन गुण प्रकट हुए। उनसे क्रिया-शक्तिप्रधान सूत्र और ज्ञानशक्तिप्रधान महत् तत्त्व प्रकट हुए। वे दोनों परस्पर मिले हुए ही हैं। महत् तत्त्व में विकार होने पर अहंकार व्यक्त हुआ। यह अहंकार ही जीवों को मोह में डालनेवाला है। वह तीन प्रकार का है- सात्त्विक, राजस और तामस। अहंकार पंचतन्मात्रा, इन्द्रिय और मन का कारण है; इसलिये वह जड़-चेतन-उभयात्मक है। तामस अहंकार से पंचतन्मात्राएँ और उनसे पाँच भूतों की उत्पत्ति हुई। तथा राजस अहंकार से इन्द्रियाँ और सात्त्विक अहंकार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता ग्यारह देवता (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन- इस प्रकार ग्यारह इन्द्रियों के अधिष्ठाता ग्यारह देवता हैं) प्रकट हुए।

श्रीमद्भागवत महापुराण (11/12/17-18) में वाणी की उत्पत्ति के विषय में निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है-

"स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः॥

यथानलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः।
अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी॥"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा-प्रिय उद्धव! जिस परमात्मा का परोक्ष रूप से वर्णन किया जाता है, वे साक्षात् अपरोक्ष-प्रत्यक्ष ही हैं, क्योंकि वे ही निखिल वस्तुओंको सत्ता-स्फूर्ति-जीवन-दान करनेवाले हैं, वे ही पहले अनाहत नादस्वरूप परा वाणी नामक प्राण के साथ मूलाधारचक्र में प्रवेश करते हैं। उसके बाद मणिपूरकचक्र (नाभि-स्थान) में आकर पश्यन्ती वाणी का मनोमय सूक्ष्मरूप धारण करते हैं। तदनन्तर कण्ठदेश में स्थित विशुद्ध नामक चक्र में आते हैं और वहाँ मध्यमा वाणी के रूप में व्यक्त होते हैं। फिर क्रमशः मुख में आकर ह्रस्व-दीर्घादि मात्रा, उदात्त-अनुदात्त आदि स्वर तथा ककारादि वर्णरूप स्थूल-वैखरी वाणी का रूप ग्रहण कर लेते हैं। अग्नि आकाश में ऊष्मा अथवा विद्युत् के रूप से अव्यक्तरूप में स्थित है। जब बलपूर्वक काष्ठमन्थन किया जाता है, तब वायु की सहायता से वह पहले अत्यन्त सूक्ष्म चिनगारी के रूप में प्रकट होती है और फिर आहुति देने पर प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है, वैसे ही मैं भी शब्दब्रह्मस्वरूप से क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी के रूप में प्रकट होता हूँ।

चैतन्य आत्मा के प्रारम्भिक स्थूलतम रूप को मन कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो मन सूक्ष्म भौतिक पदार्थ है। आत्मा के सर्वाधिक निकट होने के कारण यह विभु है। मन अन्त:करण है अर्थात् ज्ञान प्रक्रिया में आन्तरिक साधन के रूप में प्रयुक्त होता है। परमेश्वर के सत्स्वरूप के साक्षात्कार हेतु दिव्य दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है। भाष्यकार श्री नीलकण्ठ जी ने मन को दिव्य दृष्टि माना है। अपनी बात के समार्थन में छान्दोग्योपनिषद् की उक्ति का उद्धरण देते हैं- "मनोऽस्य दैवं चक्षु:।" मन का स्वरूप ही संकल्प करना एवं विकल्प करना है। कहा भी गया है- **"संकल्पविकल्पात्मकं मन:।"** यह स्वाभाविक रूप से चञ्चल है। श्रीमद्भगवद गीता में मन के विषय में श्रीकृष्ण ने कहा है-

"यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमास्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।"

गीता-6/26

अर्थात् यह स्थिर न रहने वाला और चञ्चल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त से संसार में विचरता है, उस-उस विषय से रोककर यानी हटाकर अपने वश में लायें।

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।"

गीता - 6/35

अर्थात् हे महाबाहो! नि:सन्देह मन चञ्चल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु उसका निश्चित उपाय अभ्यास और वैराग्य है।

मन ही सभी इन्द्रियों में प्रधान है। इसे ही बन्धन एवं मोक्ष का कारण भी माना जाता है। कहा गया है- **"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।"**

3.6.2 वाणी के प्रकार एवं उसकी प्रक्रिया

परात्रिंशिका इत्यादि आगम ग्रन्थों में वाक् स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। वाक्यपदीय में तो कहा गया है कि, ज्ञान की शश्वत वाग्रूपता यदि उच्छिन्न हो जाये तो प्रकाश भी प्रकाशित न हो। वाग्रूपता ही प्रकाश को प्रकाशित करने वाली प्रत्यवमर्शिनी शक्ति है।

"वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।
न प्रकाश: प्रकाशेत् सा हि प्रत्यवमर्शिनी।।"

वैदिक साहित्य में वाक् या वाणी के मूलतः दो भेद किए गए हैं-निरुक्ता और अनिरुक्ता। निरुक्ता वाणी वह है जो प्रकट सुनाई पड़े और व्यक्त हो। अनिरुक्ता वह है जो अप्रकट और अव्यक्त हो। जो वाणी सुनाई दे उसे व्यक्त, जो न सुनाई दे उसे अव्यक्त कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसे ही परा तथा अपरा वाक् कहते हैं।

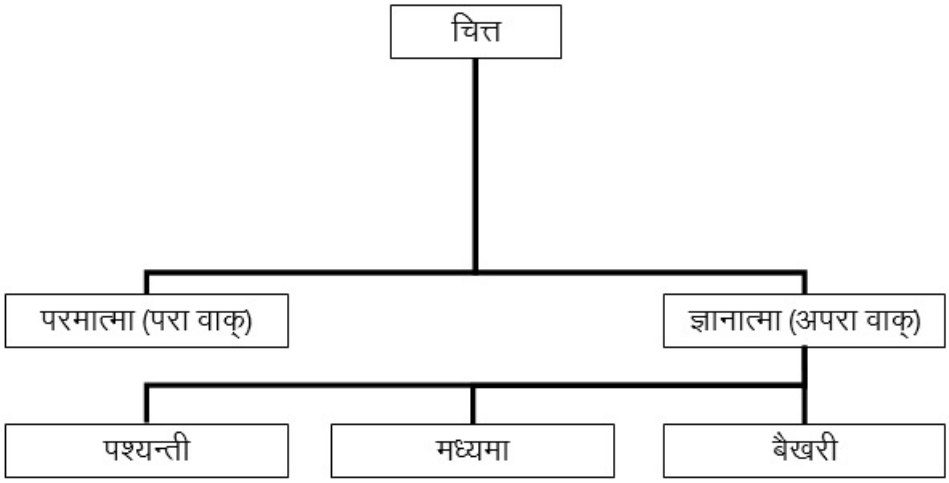

योगशास्त्रके अलंकार-कौस्तुभ और पदार्थादर्श आदि ग्रन्थों में वर्ण के चार भेद बताए गए हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। उनकी परिभाषा के अनुसार जब मूलाधार से पहले पहल नाद रूप में वर्ण की उत्पत्ति होती है तब उसे परा कहते हैं। वह वर्ण जब नाद रूप में मूलाधार से उठकर धीरे-धीरे नाभि प्रदेश में पहुँचता है तब वह पश्यन्ती कहलाता है। जब वह हृदय से उठकर क्रमशः बुद्धि और संकल्प के साथ सम्पर्क कर लेता है तब उसे मध्यमा कहते हैं। इसके पश्चात् जब वह बुद्धि से उठकर कंठ में पहुँचकर मुख से प्रकट होता है तब वह वैखरी कहलाता है। इसी तरह का वर्णन तन्त्रागम शास्त्र में कुछ इस प्रकार से प्राप्त होता है-

"परावाङ्मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया बैखरी कण्ठदेशगा।।"

ऋग्वेद में उल्लेख प्राप्त होता है कि-

"चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।"

अर्थात् वाणी के चार स्थान होते हैं। ब्रह्मवेता मनीषी उन्हें भलीभाँति जानते हैं। सामान्यजन वाणी के तीन पदों से पूर्णतया अपरिचित होते हैं और वे वाणी के चतुर्थ रूप वैखरी को ही जानते एवं प्रयोग करते हैं।

अपनी पुस्तक 'पूर्णता-प्रत्यभिज्ञा' (374-375) में पं. श्री रामेश्वर झा भी वाणी के चार प्रकार बताते हुए लिखते हैं-

"चिद्धानन्दरूपस्य पूर्णस्योर्मिरिवाम्बुधेः।
सा पराहंचमत्कारपरामर्शमयी स्थितिः।।

परा सूक्ष्मा तथा स्थूला त्रिविधैका प्रकीर्तिता।
तथा परा च पश्यन्ती मध्यमा बैखरी स्मृता।।"

प्रिय छात्रों! वाणी के इन चारों प्रकार को सरलभाषा में कुछ वाचक और वाच्य के रूप में समझ सकते हैं। जिसके द्वारा कहा जाता है वह वाचक है, जैसे- शब्द। जिसको कहते हैं वह वाच्य कहलाता है, जैसे- अर्थ। बिना वाचक के वाच्य नहीं हो सकता। वाच्य-वाचक का भेद यदि बाहर हो जाये तो 'बैखरी'- "बिखरे शरीरा भवा बैखरी।" यदि वह भेद आन्तिरिक रहे तो

'मध्यमा' कह सकते हैं। यदि वाच्य और वाचक अभेद एवं भेद में रहते हैं तो उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। यथा- 'चने का दाल'। चना यद्यपि बाहर एक ही है किन्तु अन्दर दो है, या भविष्य में दोनों में भेद होने वाला है। इस प्रकार पश्यन्ती की भेदाभेद की अवस्था मान सकते हैं। वाच्य और वाचक जब शून्य हो उसे 'परा' वाणी कहते हैं। यह पूर्ण अभेद की अवस्था है। इसे सारणी द्वारा इस प्रकार से समझ सकते हैं-

वाणी के प्रकार	**वाणी की अवस्था**
परा	अभेदावस्था
पश्यन्ती	भेदाभेद अवस्था
मध्यमा	भेदावस्था (आन्तरिक)
बैखरी	भेदावस्था (वाह्य)

मनुष्य के मुख-विवर में कण्ठगत स्वरयन्त्र (काकली) में प्रकार के दो तन्तु तने हुए हैं कि जब भीतरका (और कभी-कभी बाहरक भी) श्वास-वायु उनको कम्पित करते हुए विभिन्न वेगों से निकाला (या प्रवेश किया) जाता है तब मुख-विवर के भीतर विभिन्न स्थानों पर जिह्वा का अटकाव देकर बोलने से विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ और वर्ण व्यक्त होने लगते हैं। वाणी की प्रक्रिया पूर्णतः सीखी हुई और पूर्णतः संभव होती है क्योंकि मनुष्य का बालक ऐसी शक्ति लेकर उत्पन्न होता है कि वह अपने वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया करके अपनी व्यवस्था करता चल सके। सामान्यतः प्रत्येक बालक अपनी वाणी की प्रक्रिया को बनाए रखने के लिये वाक्तन्तु (वाकल कौडेंस), जीभ, दांत, ओठ, नाक और मुख-विवर से युक्त उत्पन्न होता है। इसके साथ-साथ वाणी की सहायता के लिये उसके शरीर में फेफड़े और डायफ्राम (पेट और छाती बीचका भाग) भी होता है। वाणी की उत्पत्ति में अनुकरण और आवृत्ति भी सहायक होती है। जैसे-जैसे मानव बालक बड़ा होता चलता है त्यों-त्यों उसकी अपनी वाणी का शक्ति और दूसरों की वाणी समझने की शक्ति बढ़ती जाती है अर्थात् सयानपन भी वाणी की अभिवृद्धि में सहायक होता है। बड़ी अवस्था में मनुष्य अधिक शीघ्रता से वाणी सीख सकता है।

3.7 वाङ्नस् संवाद का वैशिष्ट्य

वाङ्नस् संवाद हेतुकल्पना मूलक उपाख्यान का एक उदाहरण है। ऐसे उपाख्यानों में कथ्य को स्पष्ट करने के लिए किसी हेतु की स्थापना की जाती है। शतपथ के बारहवें उपाख्यान में दर्शपूर्ण मास निरूपण में प्रजापति हेतु उपांशु हवियों के प्रतिपादन हेतु मन तथा वाणी में स्पर्धा का प्रदर्शन किया गया है। हेतुकल्पना मूलक उपाख्यानों में पर्याप्त बौद्धिक व्यायाम के साथ-साथ यत्र-तत्र साहित्यिक सौंदर्य भी प्राप्त होते हैं। मन तथा वाणी के झगड़े सम्बन्धित उपाख्यान में अद्भुत मनोवैज्ञानिक सौंदर्य प्रदर्शित है। अनेक उपाख्यानों में विषय परस्पर मिले-जुले भी हैं। शतपथ के अनेक उपाख्यान पौराणिक उपाख्यानों की स्रोतस्विता को भी प्रस्तुत करते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 1

1. वाङ्नस् संवाद किस ग्रन्थ में है-
   क. शतपथ में
   ख. शाङ्खायन में

ग. गोपथ में

घ. तैत्तिरीय में

2. शतपथ ब्राह्मण में उपाख्यानों की सङ्ख्या है-

क. 100

ख. 24

ग. 140

घ. 1000

3. वैदिक साहित्य में वाणी के मूलत: कितने प्रकार हैं-

क. 10

ख. 2

ग. 108

घ. 51

4. निम्नलिखित में से कौन वाणी के प्रकार हैं-

क. परा और पश्यन्ती

ख. मध्यमा और बैखरी

ग. मात्र विकल्प क

घ. विकल्प क और ख दोनों

5. शतपथ ब्राह्मण के वाङ्मनस् संवाद अनुसार यह संवाद है-

क. मन और वाणी का

ख. देवताओं और वाणी का

ग. देवताओं और मन का

घ. मनु और मत्स्य का

6. वाङ्मनस् संवाद शतपथ ब्राह्मण के प्रथम कण्डिका के चतुर्थ अध्याय के पंचम ब्राह्मण की मन्त्र संख्या है-

क. 1-5

ख. 14-25

ग. 1-7

घ. 8-13

7. मन और वाणी दोनों अपने विवाद के निस्तारण हेतु किसके पास जाते हैं-

क. सूर्य के पास

ख. प्रजापति के पास

ग. विष्णु के पास

घ. इनमें से कोई नहीं

8. प्रजापति मन और वाणी में किसको श्रेष्ठ बताते हैं-

   क. मन और वाणी दोनों को

   ख. वाणी को

   ग. मन को

   घ. दोनों में से किसी को नहीं

3.8 सारांश

इस आख्यान का सारांश यही है कि जो भी व्यक्ति लोक में अपने कर्म का वाक् के द्वारा बखान करते रहते हैं, निश्चय उनका कर्म आत्मसम्पत्ति से सर्वथा ही वंचित हो जाता है। ऐसा कर्म निर्बल है। सबल-सार्थक-वही कर्म माना जायेगा, जो आत्मशक्ति से युक्त रहेगा। एवं आत्मशक्ति से वही कर्म युक्त रहेगा, जिसमें वाक् व्यापार अर्थात् प्रचार अथवा दिखावे का अधिकाधिक अभाव रहेगा अर्थात् जिसका ढिंढोरा नहीं पीटा जायेगा। अपने मुह से बखान न कर मनोबल जितना ही प्रवृद्ध बनेगा, कर्म में उतनी ही अधिक बलवृद्धि होगी। अतएव कर्मसिद्धि के लिए अपने कर्म को सुदृढ़-सफल सत्य बनाने के लिए बिना उसका बखान किए चुपचाप ही कर्म का अनुगमन करना चाहिए। यही कर्मसिद्धि का अन्यतम द्वार है।

इस इकाई के विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि मन और वाणी दोनों में चैतन्यांश व्यापक रूप में समाहित है। इसीलिये यज्ञ में मन और वाणी दोनों के शुद्ध स्वरूप पर बल दिया गया है। वाणी शब्दात्मक होते हुए भी कहीं न कहीं मन पर निर्भर है।

"सत्पूतां वदेत्वाचं मनः पूतं समाचरेत्"

सरल भाषा में कहा जाये तो सत्य से जो पवित्र हो चुका है वह बोलना चाहिए और मन को जो शुद्ध लगे उसके अनुसार आचरण करना चाहिए। महाकवि भारवि ने भी उन्हीं को उत्कृष्ट विद्वान बताया है जो अपने मनोभावों को शब्दों में व्यक्त करने में सक्षम हो-

"भवन्ति ते सभ्यतमां विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये।"

इस संवाद का यही मूल सन्देश है कि व्यक्ति को अपना कर्म शुद्ध मन से चुपचाप करते रहना चाहिए, उसका ढिंढ़ोरा नहीं पीटना चाहिए। जो सच्चे मन से विचार कर वाणी द्वारा प्रकट और कार्य रूप में परिणत किया जाता है ऐसे ही कार्य का मनुष्य को फल मिलता है।

"यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति
तत्कर्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते।"

इस संवाद द्वारा मन की प्रधानता सिद्ध होती है।

3.9 शब्दावली

अहम्भद्र = मैं ही श्रेष्ठ हूँ यह भाव।

तद्विज्ञपयाम् = जानती हूँ।

संज्ञपयामीति = बताती हूँ।

व्विसिष्मिये	=	हतोत्साहित हो गयी।
पपात	=	गिर गया।
उपांशु	=	वह जप जो मात्र स्वयं के सुनने योग्य हो। इसमें जपकर्त्ता के ओष्ठ हिलते मात्र हैं, और बहुत मध्यम स्वर में बुदबुदाने की ध्वनि आती है।
आत्रेयी	=	रजस्वला स्त्री के लिए प्रयुक्त होने वाली एक संज्ञा।

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न क्र. 1 - 1. क, 2. ग, 3. ख, 4. घ, 5. क, 6. घ, 7. ख, 8. ग।

3.11 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. शतपथ ब्राह्मण (विज्ञान-भाष्य) पं0 मोतीलाल शर्मा, राजस्थान वैदिक तत्व शोध संस्थान, मानवाश्रम, जयपुर
2. वेबर द्वारा सम्पादित पुनर्मुद्रण चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
3. संस्कृत वाङ्मय का वृहद इतिहास, प्रथम खण्ड, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1996
4. सायण-भाष्य (वेदार्थप्रकाश) तथा हरिस्वामी की टीका सहित सम्पूर्ण माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1940
5. शतपथ ब्राह्मण (हिन्दी अनुवाद), पं0 गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन-अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली, 1967
6. वाविग्यान (भाषाशास्त्र), आचार्य पण्डित श्री सीताराम चतुर्वेदी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रेस, वाराणसी, 1969
7. संवादोपनिषद्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

3.12 बोध प्रश्न

1. वाङ्मनस् संवाद के आधार पर वाणी के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. शतपथ ब्राह्मण में वर्णित वाङ्मनस् संवाद की कथा लिखें।
3. वाङ्मनस् संवाद के अनुसार मन और वाणी में कौन श्रेष्ठ है और क्यों, सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 4 शतपथब्राह्मण - अग्निहोत्र ब्राह्मण का प्रतिपाद्य व वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अग्निहोत्र का अर्थ

4.3 अग्निहोत्र का प्रतिपाद्य

- 4.3.1 अग्निचयन
- 4.3.2 अग्न्याधान विधि
- 4.3.3 अग्न्याधान काल निर्णय
- 4.3.4 वसन्त आदि ऋतुओं का देव-पितृ के रूप में विभाजन
- 4.3.5 अग्न्याधान प्रयोग सम्बन्धी विचार
- 4.3.6 पूर्णाहुति की विधि
- 4.3.7 अग्न्याधान तथा दक्षिणा विधान
- 4.3.8 पुनराधेयम्
- 4.3.9 अग्निहोत्र विधान सम्बन्धी आख्यायिका
- 4.3.10 अग्निहोत्र होम काल विधि
- 4.3.11 अग्नि उपास्थानम् (उपसना)
- 4.3.12 गार्हपत्य हवनीय
- 4.3.13 प्रात: व सायंकालीन अग्नि उपास्थापन विधान

4.4 पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार अग्निहोत्र

4.5 अग्निहोत्र का वैशिष्ट्य

- 4.5.1 अग्निहोत्र का धार्मिक आशय
- 4.5.2 अग्निहोत्र का वैज्ञानिक आशय
- 4.5.3 अग्निहोत्र का नैतिक एवं सामाजिक आशय

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

4.10 बोध प्रश्न

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

1. शतपथ ब्राह्मण में वर्णित अग्निहोत्र यज्ञ से परिचित हो सकेंगे।
2. अग्निहोत्र यज्ञ के स्वरूप एवं प्रतिपाद्य को जान सकेंगे।
3. अग्निहोत्र यज्ञ की परम्परा को भी समझ सकेंगे।
4. पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में अग्निहोत्र के महत्त्व से भी परिचित हो सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। यज्ञ ही एक ऐसा सिद्धान्त है जिससे एक ही साथ सृष्टि विज्ञान, धर्म विज्ञान, नीति विज्ञान और भौतिक विज्ञान की व्याख्या की जा सकती है। आख्यान एवं संवाद शैली में मन्त्रों के गूढ़ रहस्यार्थ का प्रतिपादन करना ब्राह्मण साहित्य का मुख्य लक्षण है। जिस तत्त्व की ज्ञानात्मक प्रस्तुति मन्त्रों द्वारा की जाती है उसी का विनियोग हमें ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है। संहिता में कहे गये सिद्धान्तों का ही व्यावहारिक प्रतिपादन ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा हुआ है। भारतीय संस्कृति के इस पक्ष को भली-भांति समझने के लिए कतिपय वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों एवं श्रौतसूत्रों का अध्ययन अति महत्त्वपूर्ण है। शतपथ ब्राह्मण के द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र का प्रतिपादन अध्याय एक से चतुर्थ अध्याय तक हुआ है। इसमें- अग्न्याधानम्, पुनराधेयम्, अग्निहोत्रम्, पिण्डपितृयज्ञ, आग्रयणेष्टि, दाक्षायणयज्ञ, चातुर्म्मास्यानि का वर्णन है। इस इकाई में हम शतपथ ब्राह्मण में वर्णित उपरोक्त अग्निहोत्र का अध्ययन करेंगे।

4.2 अग्निहोत्र का अर्थ

तैत्तिरीय ब्राह्मण (2/1/2) में अग्निहोत्र शब्द की व्युत्पत्ति इस रूप में बताई गयी है कि- यह वह कृत्य है, जिसमें अग्नि के लिए होम किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण (12/4/1/1) में आया है- "दीर्घसत्रंह वा एत उपयन्ति येऽग्निहोत्रं जरयावावध्ये वास्मान्मुच्यते मृत्युना वा" अग्निहोत्र प्रातः एवं सायं दो बार जीवनपर्यन्त या सन्यासी होने तक करना पड़ता है। पति-पत्नि साथ मिलकर अग्निहोत्र यज्ञ करते हैं। अग्निपूजा मूलरूप में व्यक्तिगत होते हुये भी सामूहिक कृत्य है। इसमें कुछ विशिष्ट जगत्सृष्टि-विषयक सिद्धान्त पाये जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी अग्निहोत्र सम्बन्धी विवेचना प्राप्त होती है।

4.3 अग्निहोत्र का प्रतिपाद्य

शतपथ ब्राह्मण में वर्णित अग्निहोत्र ब्राह्मण का प्रतिपाद्य अग्निहोत्र यज्ञ के माध्यम से अग्नि की महत्ता का प्रकाशन और मानव जीवन में उसकी उपयोगिता को बताना है। अब हम डॉ. अल्बेर्त वेबर द्वारा सम्पादित एवं पं. गंगापसाद उपध्याय द्वारा अनूदित 'शुक्ल यजुर्वेदीय, शतपथ ब्राह्मण, माध्यन्दिन शाखा' में वर्णित अग्निहोत्र यज्ञ के क्रमिक विवेचन के बारे में जानेंगे।

4.3.1 अग्न्याधानम्

शतपथ ब्राह्मण के द्वितीय काण्ड के प्रथम अध्याय में यज्ञ में अग्नि के आधान के पूर्व की तैयारी का वर्णन किया गया है। अग्निहोत्र यज्ञ के प्रपिपादन के पूर्व यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि यज्ञ के पूर्व पृथ्वी पर जल छिड़क कर अग्नि के आधान की तैयारी करें। जिस वस्तु में अग्नि रहती है उस-उस वस्तु की तैयारी की जाती है। उसके बाद यज्ञ योग्य पृथिवी का चुनाव कर उस पर रेखा खींचते हैं और यज्ञ हेतु शुद्ध भूमि के चुनाव हेतु उस भाग में जल छिड़कते हैं। जल अन्न है क्योंकि जब जल इस लोक में आता है तभी अन्न उत्पन्न होता है। फिर यज्ञकर्त्ता इनमें 5 पाँच प्रकार की और वस्तुएँ- (1) जल, (2) स्वर्ण, (3) आंखुपारिख, (4) शर्करा, (5) नमक को लाता है फिर इन पाँचों के बाद अग्नि का आधान होता है। अग्निहोत्र का मुख्य आधार अग्न्याधान है। अग्न्याधान को अर्थ होता है- अग्नि का विधिपूर्वक स्थापन। इसके पश्चात की विधि इस प्रकार से है।

4.3.2 अग्निचयन

यज्ञ में अग्नि का चयन किसी विशेष मुहुर्त में किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में यह भी लिखा है कि अग्नियों का आधान कृत्तिका नक्षत्र में करें क्योंकि कृत्तिका अग्नि का ही नक्षत्र है। जो अग्नि के नक्षत्र मे अग्नियों का आधान करता है वह सलोम (अनुकूलता) स्थापित करता है। इसलिए कृत्तिका नक्षत्र में अग्न्याधान करें। सन्तान और पशु के इच्छुक लोग रोहिणी नक्षत्र में अग्नि का आधान करें। जिसे श्री की प्राप्ति करनी है वह मार्गशीर्ष नक्षत्र में अग्न्याधान करे। यदि लाभ और काम हेतु यज्ञ करना है तो हस्त नक्षत्र में अग्नि का आधान करना चाहिए तथा क्षत्रिय वर्ण को चित्रा नक्षत्र में अग्नि का आधान करना चाहिए।

4.3.3 अग्न्याधान काल निर्णय एवं तद्नुसार अगिनहोत्र का विभाजन

चूँकि सही समय पर अग्न्याधान से सुफल की प्राप्ति होती है इस लिए अग्न्याधान-काल का निर्धारण करते हुए नक्षत्र और ऋतुनिर्णय और देवयजन की साज-सज्जा का विधान है। जैसेकि- कृष्णयजुर्वेदीय यागानुष्ठाता गार्हपत्याग्नि का आधान रात्रि में और सूर्य के आये उदित होने पर आहवनीयाग्नि का आधान करते हैं। ऋतुओं के आधार पर कालनिर्णय पर विचार करते हुए यह भी कहा गया है कि "वसन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा देव-ऋतुएं हैं। शुक्ल पक्ष देवों की ऋतु है। कृष्णपक्ष पितरों की ऋतु है। शरद, हेमन्त और शिशिर ये पितृ ऋतुएँ हैं। इसीप्रकार दिन देवों का है, रात्रि पितरों की है। जब सूर्य उत्तरायण हों तभी अग्न्याधान करें। जो इच्छा करे और यह कि मुझे शक्ति, श्री और यश की प्राप्ति हो वह ग्रीष्म में अग्न्याधान करे और जो यह चाहे कि बहुत सन्तान तथा पशु हो जाएं वह वर्षा में अग्न्याधान करें।

4.3.4 अग्न्याधान प्रयोग सम्बन्धी विचार

जिस दिन के अगले दिन अग्न्याधान करना है उस दिन (यजमान और उसकी स्त्री) दिन में ही भोजन करें, क्योंकि देव मनुष्यों के मन को जानते हैं। वे जानते हैं कि अगले दिन अग्न्याधान होगा इसलिए सब देव घर पर आ जाते हैं। वे उसके घर में ठहर जाते हैं। इसलिए उस दिन को उपवसथ (उपवास) करते हैं।

यह अनुचित है कि घर में ठहरे हुए मनुष्यों के भोजन करने से पूर्व गृहपति भोजन कर ले। इससे भी अधिक अनुचित यह है कि ठहरे हुए देवों के भोजन करने से पूर्व भोजन कर ले। इसलिए उस

दिन, दिन में ही भोजन करना चाहिए। परन्तु यदि इच्छा हो तो रात में भी भोजन कर सकता है। क्योंकि अभी अग्न्याधान नहीं किया, इसलिए व्रत चारी तो है नहीं। जब तक अग्न्याधान नहीं करता उस समय तक मनुष्य रहता है। इसलिए इच्छा हो तो रात में भी भोजन कर ले।

4.3.5 अग्न्याधान तथा दक्षिणा विधान

अग्न्याधान करने वाले ऋत्विज को दक्षिणा का विधान है। दक्षिणा इसलिए दी जाती है कि ऋत्विज आहुतियों से देव को प्रसन्न करता है और मनुष्य दक्षिणा देकर उस वेदोपदेष्टा ऋत्विज को विदा किया जाता है। अध्याय 2 के ब्राह्मण 2 में लिखा है-

जब यज्ञ को करते हैं तो उसका आघात करते हैं। जब (सोम) राजा को निचोड़ते हैं तो उसका आघात करते हैं। उसल और मूसली से तथा (चक्की के) दोनों पत्थरों से हवि का आघात करते हैं।

इस प्रकार आघात होने से यज्ञ शक्ति रहित हो गया (दक्ष न रहा)। देवों ने दक्षिणा देकर उसको दक्ष बनाया। चूंकि दक्षिणाओं द्वारा उसको दक्ष बनाया, इसलिए इनका दक्षिणा नाम पड़ा। इन दक्षिणाओं के द्वारा उन्होंने उस (यज्ञ) को दक्ष बनाया। यज्ञ समृद्ध (शक्तिशाली) हो जाता है, इसीलिए दक्षिणा दी जाती है। दक्षिणा कितनी दी जाय इसका भी वर्णन कुछ इस प्रकार है-

(दक्षिणा में) छः (गोएँ) दे क्योंकि एक संवत्सर में छः ऋतुएं होती है। संवत्सर प्रजापति है। जितना यज्ञ है, जितनी उसकी मात्रा है, उतनी ही दक्षिणाओं से इसको दक्ष बनाना है। बारह (गौयें) दे। संवत्सर के बारह मास होते हैं। संवत्सर यज्ञ-प्रजापति है। जितना बड़ा यज्ञ है, जितनी उसकी मात्रा है, उतनी ही दक्षिणाओं से उसको दक्ष बनाता है। चौबीस दे। संवत्सर के चौबीस अर्द्धमास (पक्ष) होते हैं। संवत्सर यज्ञ प्रजापति है । जितना बड़ा यज्ञ होता है, जितनी उसकी मात्रा होती है, उतनी ही दक्षिणाओं से वह उसको दक्ष बनाता है। दक्षिणाओं की यह मात्रा है, यदि श्रद्धा हो तो और अधिक भी दे। बताया गया है कि दक्षिणा इसलिए दी जाती है कि क्योंकि देवता तो आहुतियों से प्रसन्न होते हैं। जबकि वेदज्ञ दक्षिणा से।

4.3.6 पुनराधेयम्

वर्ष के भीतर ही यदि व्यक्ति किसी संकट से गुजरता है और उससे अग्निहोत्र यज्ञ सम्पादन नहीं पाता तो ऐसी स्थिति में वह पुन: अग्नि को प्रज्ज्वलित करता है। यहाँ भी अग्नि प्रज्ज्वलित करने की विधि भी अगन्याधान की भांति ही है। इस प्रसंग में एक कथा प्रसिद्ध है। कथा इस प्रकार है कि- वरुण ने इस (अग्नि) का राज्य की कामना से आधान किया। उसने राज्य को पा लिया। सोम ने यश की कामना से (अग्नयाधान) किया और यश को पा लिया। जो पुरुष इस रहस्य को जानकर अग्न्याधान करता है वह यशस्वी होता है और राज्य को प्राप्त होता है।

चूँकि यह यज्ञ अग्नि से सम्बन्धित है। अग्नि ज्योति है। यह पापों को जलाती है। यह उस यजमान के पापों को भी जलाती है। यही ज्योति श्री और यश को देने वाली होती है। ज्योति दूसरे लोक के पुण्य का मार्ग बनाती है। इसलिए फिर आधान करना चाहिए यह आधान पुनराधान वर्षा में करना चाहिए क्योंकि वर्षा ही सभी ऋतुओं का (प्रतिनिधि) है। वर्षा ऋतु में ग्रीष्म, शिशिर सभी तरह की अनुभूति रहती है। इसी प्रकार दोपहर के समय अग्नि का आधान करें क्योंकि इस समय सूर्य लोक के निकट रहता है और इसलिए वह मध्य से ही अग्नि का निर्माण करता है।

पुनराधेय सम्बन्धित आख्यान इस प्रकार है- पहले इस सृष्टि में प्रजापति ही था उसने सोचा मैं कैसे उत्पन्न (प्रकट) होऊ? उसने श्रम और तप किया उसने मुख से अग्नि को उत्पन्न किया। चूंकि उसको मुख से उत्पन्न किया इसलिए अग्नि अन्न का खाने वाला होता है। यह अग्नि देवों से पहले उत्पन्न हुआ था। वह अग्नि प्रजापति के ओर मुंह फाड़कर दौड़ा उस समय पृथिवी पर न औषधियाँ थीं और न वनस्पतियाँ थी। प्रजापति अग्नि से डर गया तभी उसके (स्व) महिमा ने कहा 'आहूति दे'। प्रजापति ने जाना कि यह मेरी ही (स्व) महिमा है जो कह रही है (आह) इसलिए उसने स्वाहा कहकर आहूति दे दी। प्रजापति ने आहुतियाँ देकर अपने को फिर उत्पन्न किया, और अग्नि-रूपी मृत्यु से अपने को बचा लिया जो उसको खाना चाहती थी इसलिए जो आदमी यह समझ कर अग्निहोत्र करता है वह प्रजारूप में अपने को उत्पन्न करता है जैसे प्रजापति ने किया और अपने को खाने वाली अग्नि से बचा लेता है। पुनराधेय वर्षा ऋतु की दोपहर में किया जाता है। जैमिनी मत में पुनराधेय एक प्रकार का प्रायश्चित भी है जो गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीय अग्नि के बुझ जाने के बाद प्रायश्चित स्वरूप किया जाता है।

4.3.7 अग्निहोत्र विधान

शतपथ ब्राह्मण के अध्याय 2 - ब्राह्मण 4 में वर्णित विधान का वर्णन इस प्रकार है-

यहाँ पहले एक प्रजापति ही था। उसने सोचा, मैं कैसे उत्पन्न (प्रकट) होऊ? उसने श्रम और तप किया। उसने मुख से अग्नि को उत्पन्न किया। चूंकि उसको मुख से उत्पन्न किया इसलिए अग्नि अन्न का खानेवाला है। जो इस प्रकार अग्नि का अन्त को खानेवाला जानता है वह अन्न का खानेवाला होता है। इस अग्नि को देवों से पहले उत्पन्न किया, इसलिए अग्नि का अग्रि नाम है। प्रजापति ने सोचा कि मैंने इस अग्नि को अपना अन्न खानेवाला बनाया है, और मुझे छोड़कर और कोई अन्न तो है ही नहीं; और मुझे वह खायेगा नहीं। उस समय पृथिवी की सतह पर कुछ भी नहीं थी। न ओषधियां थीं, न वनस्पतियाँ उसको इसी बात का सोच था। अब (अग्नि) उसकी ओर मुंह फाड़कर दौड़ा। वह डर गया और उसकी महिमा चली गई। वाणी ही उसकी महिमा है। यह वाणी ही चली गई। उसे संकोच हुआ, 'इसे (आग में) छोड़े या न छोड़े।' उसकी महिमा ने कहा, 'आहूति दे।' प्रजापति ने जाना कि यह तो मेरी ही (स्व) महिमा है जो कह रही है (आ) इसलिए उसने 'स्वाहा' कहकर आहुति दे दी। इसलिए 'स्वाहा' कहकर आहुति दी जाती है। अब वह निकला जो तपता है अर्थात् सूर्य, और वह आया जो बहता है अर्थात् वायु। अब अस्ति चला गया।

प्रजापति ने आहुतियां देकर अपने को फिर उत्पन्न कर लिया, और अग्नि रूपी मृत्यु से अपने को बचा लिया जो उसको खाना चाहती थी। इसलिए जो व्यक्ति यह समझकर अग्निहोत्र करता है वह प्रजा-रूप में अपने को उत्पन्न करता है जैसे प्रजापति ने किया, और खानेवाली अग्नि से अपने को बचा लेता है। और जब वह मरता है और जब उसको अग्नि में रखते हैं तो वह अग्नि से फिर उठता है। अग्नि उसके शरीर को ही जलाता है। जैसे वह माया बाप से उत्पन्न होता है उसी प्रकार अग्नि से उत्पन्न होता है। और जो अग्निहोत्र नहीं करता वह उत्पन्न होता ही नहीं। इसलिए अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए।

उन्होंने कहा, 'हम पिता प्रजापति के पीछे हुए हैं। अब हम प्रजा उत्पन्न करें जो हमारे पीछे हो।' उन्होंने एक घेरा घेरकर गायत्री से हिङ्कार छोड़कर प्रार्थना की।

तदुपरान्त आहुति देकर देवों ने उस प्रकार अपने को प्रजा के रूप में उत्पन्न किया जिस प्रकार उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन्होंने वह विजय पाई जो सचमुच पाई। अग्नि ने यह लोक जीता, वायु ने अन्तरिक्ष और सूर्य ने द्यौ। जो कोई इस रहस्य को समझकर अग्निहोत्र करता है उसके उसी प्रकार प्रजा होती है जैसे देवों के हुई, और वह उसी प्रकार विजय पाता है जैसे देवों ने। जो इस रहस्य को समझकर अग्निहोत्र करता है वह (उन देवों के साथ) इस लोक का हिस्सेदार होता है। इसलिए अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए।

4.3.8 अग्निहोत्र होम काल विधि

अध्याय 3 - ब्राह्मण 1 का वर्णन कुछ इस प्रकार है-

सूर्य ही अग्निहोत्र है क्योंकि वह इस आहुति के पहले उदय हुआ, इसलिए सूर्य अग्निहोत्र है। सायंकाल को अग्निहोत्र = (अग्रे होत्रस्य) अस्त होते हुए सूर्य के बाद आहुति देता है तो सोचता है कि जो यह है इसके यहाँ रहते हुए में आहुति दे दूं। और जो सूर्योदय से पहले प्रातःकाल के समय आहुति देता है तो सोचता है कि जो यह है उसके यहाँ रहते हुए आहुति दूं। इसलिए सूर्य ही अग्निहोत्र है' ऐसा कहते हैं। अब जब वह अस्त हो जाता है तब अग्निरूपी योनि में गर्म होकर प्रवेश करता है, और उसके गर्म होने पर यह सब प्रजा गर्म हो जाती है। थपथपाये जाकर मानो वे सन्तुष्ट होकर सो जाते हैं। रात्रि उस (सूर्य) को इसलिए छिपा लेता है कि गर्भ भी तो छिपा रहता है।

वह (सूर्य) सायंकाल को अस्त होने पर इसलिए आहुति देता है कि (सूर्य) जो रूप है उसको आहुति दी जाय और चूंकि उसको गर्भ के रूप में आहुति देता है इसलिए यह गर्मस्व जीव बिना खाये जीते रहते हैं। प्रातःकाल उदय होने से पूर्व इसलिए आहुति देता है कि इस (सूर्यरूपी बालक) को जन्म दे। वह तेज होकर चमकता हुआ निकलता है। अगर वह आहुति न देता तो कदापि न निकलता। इसलिए वह आहुति देता है। जैसे साँप केंचुली छोड़ता है इसी प्रकार वह पाप-युक्त रात्रि को छोड़ता है। जो इस रहस्य को समझकर अग्निहोत्र करता है वह उसी प्रकार पाप-युक्त रात्रि से छूट जाता है जैसे साँप केंचुली से। उस (सूर्य) के छूटने पर सब प्रजा फिर से उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि वे अपने प्रयोजन के अनुकूल विचरते हैं।

पुन: लिखा है कि वह जो सूर्यास्त से पहले आहवनीय को (गार्हपत्य से) निकालता है ये किरणें ही विश्वेदेव (सब देव) हैं। इससे अधिक जो प्रकाशित होता है प्रजापति या इन्द्र है। अहो करनेवाले के घर सब देवता पहुंच जाते हैं। और जो कोई आग न निकाल पावे और देवतागण आ जायें तो वे चले जाते हैं। और जिसके यहाँ से देवतागण लौट जायें वह सफल नहीं होता। और जिसके यहाँ से देवतागण चले गये और वह विफल हुआ, उसके विषय में लोग कहते हैं कि चाहे यह जाने या न जाने इसका सूर्य अस्त हो गया क्योंकि इसने (गार्हपत्य से आहवनीय अग्नि को) नहीं निकाला।

ध्यातव्य है सूर्यास्त से पहले आहवनीय निकालने का यह कारण है कि जब कोई बड़ा आने वाला होता है तो घर को साफ-सुथरा किया जाता है और ऐसा करके हम उनका सत्कार करते हैं, उसी प्रकार यह भी। क्योंकि जिस किसी के अग्नि निकालने के पीछे (देवतागण आते हैं, वे उसके आहवनीय गृह में घुस जाते हैं और उसी आहवनीय गृह में ठहर जाते हैं।

इसी प्रकार वह शाम को सूर्यास्त होने पर अग्नि में इसलिए आहुति देता है कि वह घर में प्रवेश किये हुए (देवताओं) के लिए आहुति देता है। और सूर्योदय होने से पहले आहुति देने का प्रयोजन यह है कि जब तक देव जाने न पायें, तब तक आहूति दी जाय। इसीलिए आसुरी का कहना था कि सूर्योदय होने के पश्चात् आहुति देनेवालों का अग्निहोत्र व्यर्थ हो जाता है जैसे खाली घर में कोई खाना ले जाय।।

इस जगत में जीविकाएँ दो प्रकार की है-जड़ वाली और बिना जड़ की वे दोनों देवताओं की हैं। इन्हीं के सहारे मनुष्य जीते हैं। पशु बिना जड़ के हैं और ओषधियां जढ़वाली बिना जड़- वाले पशु जब जड़वाली ओषधियों को खाते और जल पीते हैं तब रस उत्पन्न होता है। इसलिए इन्ही को हवि के रूप में प्रयोग किया जाता है।

वह सूर्यास्त के पश्चात् शाम को आहुति इसलिए देता है कि इस जीव रस की आहुति देवताओं के लिए दे दूं, क्योंकि यह रस उन्हीं का है जिसको खाकर हम जीते हैं। और जो वह रात्रि में भोजन करता है वह आहुति का शेष भाग है जिसमें से बलि निकाला जा चुका है (अर्थात् अन्य जीवों के लिए भाग बाँट दिया गया हो)। क्योंकि जो अग्निहोत्र करता है वह यज्ञ के शेष भाग को खाता है।

प्रातःकाल सूर्योदय से पहले आहुति देता है, वह सोचता है कि इस जीवन-रस की देवताओं के लिए आहुति दे दूँ, क्योंकि यह इनका है जिसको खाकर हम जीते हैं। वह जो दिन में भोजन करता है वह यज्ञ-शेष है, जिसमें से बलि निकाला जा चुका हो। जो अग्निहोत्र करता है वह यज्ञ के शेष भाग को खाता है। इस विषय में कहा जाता है कि अन्य सब यज्ञ समाप्त हो जाते हैं परन्तु अग्निहोत्र समाप्त नहीं होता। बारह वर्ष चलनेवाला यज्ञ भी अन्तवाला है, परन्तु अग्निहोत्र अन्तवाला नहीं है। क्योंकि सायं को आहुति देकर जानता है कि प्रातःकाल आहुति दूंगा, और प्रातः काल आहुति देकर जानता है कि सायं को आहुति दूंगा। इसलिए अग्निहोत्र अनन्त है और इससे अनन्त सन्तान उत्पन्न होती है। और जो मनुष्य अग्निहोत्र की अनन्तता को समझता है, उसके अनन्त सन्तान और वैभव होता है।

वह अग्नि में जो आहुति देता है, वह देवताओं के लिए देता है। इसी से देव (यज्ञों में) सम्मिलित हैं। और जो पोंछ डालता है उसकी पितरों और ओषधियों के लिए आहुति देता है। इससे पितर और ओषधियां (यज्ञ में) सम्मिलित हैं। यह जो आहुति देकर खाता है वह मनुष्यों के लिए आहूति देता है। इससे (मनुष्य यज्ञ में) सम्मिलित होते हैं।

इसको तो पाकयज्ञ (Domestic Sacrifice) कहना चाहिए, क्योंकि हवियंज्ञ में जो कुछ न क में लिया जाता है वह सब अग्नि में छोड़ दिया जाता है। और यहाँ अग्नि में आहुति देने के पश्चात् आचमन करता और खाता है। यह सब पाकयज्ञ की ही क्रिया है। यह यज्ञ का पाशविक रूप है क्योंकि पाकयज्ञ पाशविक है। पहली एक आहुति वही है जिसको प्रजापति ने दिया था और जिसके पीछे देवों ने (यज्ञ) जारी रक्खा अर्थात् अग्नि, वायु और सूर्य ने इसलिए यह दूसरी आहुति देता है। वह जो पूर्वाहृति दी गई वह तो अग्निहोत्र का देवता है, इसलिए उसी के लिए दी जाती है।

यह जो पूर्वाहुति है वह आत्मा के लिए दी जाती हैं। यह मन्त्र से दी जाती है, क्योंकि मन्त्र निश्चित है और आत्मा भी निश्चित है। दूसरी प्रजा के लिए दी जाती है। वह मौन होकर दी जाती है, क्योंकि मौन अनिश्चित है और प्रजा भी अनिश्चित है। (सायंकाल की आहूति इस मन्त्र से दी

जाती है 'अग्नि ज्योंतिज्योंतिरग्निः स्वाहा' (यजु. 611), और प्रातकाल इससे 'सूपम्योतिम्पतिः सूर्यः स्वाहा' (यजु. 3,9)। सत्यता के साथ आहुति दी जाती है, क्योंकि जब सूर्य व जाता है तो अग्नि ही ज्योति रहती है।

ब्रह्मवर्चस की कामना के लिए तक्षा ने अरुण के प्रति यही कहा था- 'अग्निर्वचों 'ज्योतिर्वचः सूर्योवच ज्योतिर्वच (यजु. 339)। जो पुरुष समझकर अग्निहोत्र करता है वह ब्रह्मवर्चसी हो जाता है।

यह मन्त्र सन्तानोत्पत्ति का रूप है। "अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा" कहकर वह ज्योतिरूपी बीर्य को देवता के द्वारा दोनों ओर से घेर देता है। दोनों ओर से घिरकर ही तो वीर्य से उत्पत्ति होता है। इस प्रकार दोनों ओर से घेरकर ही वह इससे सन्तानोत्पत्ति कराता है।

प्रातःकाल "ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा" (यजु0 316), कहकर वह देवता के द्वारा ज्योति रूपी बीर्य को बाहर कर देता है। बाहर आकर ही वीर्यं उत्पत्ति करता है, इसलिए इसके द्वारा उत्पत्ति करता है। इसके विषय में कुछ लोग कहते हैं कि वह सायंकाल को अग्नि में सूर्य के लिए आहुति देता है और प्रातःकाल सूर्य में अग्नि के लिए। यह उनके लिए सच है जो 'उदितहोमि' अर्थात् सूर्योदय के पश्चात् होम करनेवाले हैं। क्योंकि जब सूर्य अस्त होता है तब अग्नि ज्योति होती है। और जब सूर्य उदय होता है तो सूर्य ज्योति होता है। इसमें कोई दोष नहीं है। दोष इसमें है कि जो अग्निहोत्र के देवता हैं उनको निश्चय करके न कहा जाय (अर्थात् सूर्य और अग्नि को अलग-अलग)।

'जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा' (यजु0 3110) कह-कर वह प्रत्यक्ष रूप से सूर्य के लिए आहुति देता है। इसलिए इसी प्रकार आहुति दे। उन्होंने कहा 'हमारे लिए कौन आहूति देगा?' 'ब्राह्मण ही' हे ब्राह्मण हमारे लिए आहूति दे। इस प्रकार आहूति देने के लिए व्यक्ति का एक सन्तुलित आध्यात्मिक अनुशासन से गुजरना होता है।

4.3.9 अग्नि उपास्थानम् (उपसना)

अब हम अग्निहोत्र की उपासनात्मक पक्ष के बारे में जानेंगे। अध्याय 3 - ब्राह्मण 2 में लिखा है कि- अग्नि के समक्ष आवहनीय के पास खड़ा होना और बैठना ही उपासना है।

अब उन (अग्नियों) के उपस्थान (उपासना) के विषय में जो सायं और प्रातः को आहवनीय के पास खड़ा होना और बैठना है यही उसकी उपासना है, और जब लौटकर गार्हपत्य के पास बैठना या लेटना है वह उसकी उपासना है, और जब (आहवनीय से) निकलकर अन्वाहार्य-पचन का स्मरण करना तथा मन में उसके पास ठहरना है वह उसकी उपासना है। और प्रातःकाल बिना खाये मुहूर्त-भर सभा में बैठना और यथेच्छा परिक्रमा देना है वही उसकी उपासना है। और जहाँ उसमें से लेकर भस्म डाली जाती है वहां ठहरना है, वही उसकी उपासना है। इस प्रकार उन देवताओं की उपासना हो गई।

उपवास के दिन ही उसको लाना चाहिए जब इसमें यज्ञ करने वाले हों, और यह (यजमान के) अमोध (निश्चित सफलता) के लिए लाई जाती है। अब हम उस कुण्ड की अग्नि के स्वरूप पर विचार करेंगे-

जब अग्नि पहले ही जलाई जाती है और उसमें धुआं ही निकलता है, तब यह अग्निरुद्र होती है। जैसे रुद्र इन प्रजाओं को कभी अश्रद्धा से, कभी कड़ेपन में, कभी मारकर बरतता है, उसी प्रकार यदि कोई चाहे कि अन्न खाऊँ तो वह यह आहुति दे। जो कोई समझकर आहुति देता है उसको अन्न की प्राप्ति हो जाती है।

जब अग्नि अधिक प्रदीप्त हो जाती है तो वरुण हो जाती है। जैसे वरुण प्रजा को कभी पकड़कर, कभी कड़ेपन से और कभी मारकर बरसता है, इसी प्रकार यदि कोई चाहे कि मैं अन्न पाऊँ तो वह यह आहुति दे जो कोई समझकर आहूति देता है उसको अन्न की प्राप्ति हो जाती है।

जब अग्नि बहुत प्रज्वलित होती है और पुष्कल धुआँ चक्कर काटता हुआ ऊपर को उठता है तो यह इन्द्र हो जाती है। जो कोई चाहे कि इन्द्र के समान श्री और यश वाला हो जाऊँ तो वह यह आहुति दे। जो कोई यह समझकर आहुति देता है उसको अन्न की प्राप्ति हो जाती है।

जब यह अग्नि घटती हुई शान्त-सी तिरछी जलती है तो मित्र हो जाती है। यदि कोई चाहे कि मित्रता से अन्न खाऊँ, जैसे कि लोग कहा करते हैं कि अमुक ब्राह्मण मित्र है, वह किसी की हानि नहीं करता तो उसके साथ अन्न खाये, तो वह आहुति दे जो समझकर आहुति देता है वह अन्न को प्राप्त कर लेता हैं।

जब इस (अग्नि) के अङ्गारे जलते हैं तब यह ब्रह्म हो जाती है। जो व्यक्ति यह चाहे कि मैं ब्रह्म-वर्चसी हो जाऊँ वह यह आहुति दे। जो यह समझकर आहुति देता है उसे अन्न की प्राप्ति हो जाती है।

यजमान को साल भर तक इनमें से एक विधि का सेवन करना चाहिए, चाहे वह स्वयं आहुति दे या किसी से दिलावे। और जो कभी किसी के और कभी किसी के लिए आहुति देता है तो वैसा ही व्यर्थ है जैसे पानी के लिए कभी यहाँ खोदे, कभी वहाँ, या अन्न के लिए और बीच में छोड़ दे और यदि लगातार आहुति देता जाय तो ऐसा है जैसे जल या अन्न के लिए खोदता खोदता शीघ्र प्राप्त कर ले। ये जो आहुतियाँ हैं वे अन्न के (खोदने के लिए अनि या खुरपा हैं। जो समझकर अग्निहोत्र करता है वह अन्न की प्राप्ति करता है।

4.3.10 पूर्णाहुति की विधि

अब हम यज्ञ की पूर्णाहुति के बारे में जानेंगे- जो पूर्णाहुति है वह देव है, जो पिछली है वह मनुष्य और जो सुकूं में बच रहे ह पशु। पूर्वाहुति में थोड़ा ही डालता है, पिछली में अधिक और उससे भी अधिक स्रुक् में बच्चा रखता है। पूर्णाहुति में थोड़ा-सा इसलिए डालता है कि देव आदमियों से कम हैं। दूसरी आहुति में अधिक इसलिए डालता है कि मनुष्य देवों से अधिक है। सबसे अधिक इसलिए छोड़ता है कि पशु मनुष्यों से भी अधिक हैं। जो कोई समझकर अग्निहोत्र करता है उसके आश्रित मनुष्यों (भा) की अपेक्षा पशु अधिक होते हैं। जिसके भायें (आश्रित मनुष्य) कम और पशु अधिक हों, उसी को समृद्ध पुरुष कहते हैं।

4.3.11 गार्हपत्य हवनीय

कुछ विद्वानों का मत है कि गृहस्थ को सभी वैदिक अग्नियाँ प्रज्ज्वलित रखनी चाहिए तथा कुछ मानते हैं कि गार्हपत्याग्नि को ही सतत रखनी चाहिए। गृहस्थ अध्वर्यु से या अरणिमन्थन से या सम्पन्न वैश्य के घर से अग्नि को मांगता है।

शतपथ ब्राह्मण के अध्याय 3, ब्राह्मण 3 में इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है कि- जब प्रजापति ने प्रजा उत्पन्न की और अग्नि उत्पन्न की तो यह उत्पन्न होते ही सबको जलाने लगी, और सबने उससे बचना चाहा, और जो प्रजा थी उसने उसको बुझाना चाहा। यह सहन न करके वह पुरुष के पास आई।

इसीलिए ऋषि ने कहा था- "शतमिन्नु शरदोऽअन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः" (यजु0 25।22; ऋ0 11866) - "हे देवताओ, सौ वर्ष हमारे सामने हैं जब तुम हमारे शरीरों के बुढ़ापे को करते हो। जब पुत्र पिता हो जाते हैं आप हमारी पूरी होनेवाली आयु को बीच में मत काटो।" क्योंकि जो (अग्नि) अब तक पुत्र था अब पिता हो गया। यही कारण है कि अग्न्याधान करना चाहिए।

यह जो सूर्य है वह मृत्यु है, इसलिए उससे इस ओर की प्रजा मर जाती है। और जो उससे परली ओर हैं अर्थात् देव, वे अमर रहते हैं। ये सब प्रजाएँ किरणों द्वारा प्राणों में स्थित हैं। इसीलिए किरणें प्राणों तक जाती हैं।

यह सूर्य जिसको चाहता है उसके प्राण लेकर उदय होता है और वह मर जाता है। जो इस मृत्यु से न बचकर उस लोक में जाता है, उसको बार-बार मारा जाता है, उसी प्रकार जैसे इस लोक में कैदी पर सस्ती करते हैं और जब चाहते हैं तब मार डालते हैं। यह जो शाम को सूर्यास्त होने पर दो आहुतियाँ देता है वह इन दो अगले पैरों से इस मृत्यु पर प्रतिष्ठा पाता है। और यह जो सूर्योदय से पूर्व ही आहुतियाँ देता है वह पिछले दो पैरों से इस मृत्यु पर प्रतिष्ठा पाता है, और जब सूर्य निकलता है तो उसको लेकर मृत्यु से छूट जाता है। यह अग्निहोत्र के द्वारा मृत्य से छूटने का विधान है। जो इस प्रकार अग्निहोत्र द्वारा मृत्यु से छुटकारे का ज्ञान रखता है, वह बार-बार मौत से छूट जाता है।

अग्निहोत्र स्वर्ग की नाव है। आहवनीय और गार्हपत्य उस स्वर्ग की नाव की दो तरके हैं. और दूध की आहुति देनेवाला मल्लाह है।

जब वह पूर्व की ओर चलता है तो मानो वह इस नाव को पूर्व की ओर स्वर्ग की ओर ले जाता है और उसके द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है। उस पर उत्तर से चढ़ना उसको स्वर्गलोक में ले जाना है। जो दक्षिण से घुसकर उसमें बैठता है तो ऐसा समझना चाहिए मानो वह उस समय नाव में घुसने लगा जब वह चल पड़ी और वह पीछे और बाहर रह गया।

प्रजापति अग्नि है और प्रजापति संवत्सर है। इसलिए वर्ष प्रतिवर्ष अग्नि चयन पर अग्निहोत्र होता है और वर्ष प्रतिवर्ष अग्नि चयन किया जाता है, उस मनुष्य का जो यह समझकर अग्निहोत्र करता है। अस्सी ऋचाओं की सात सौ बीस आहुतियाँ देवें। सायं और प्रातः के अग्निहोत्र की दो आहुतियाँ होती हैं। इस प्रकार वर्ष भर में सात सौ बीस आहुतियां हुई। इस प्रकार वर्ष प्रतिवर्ष यह अग्निहोत्र बड़ी स्तुति द्वारा किया जाता है। और जो अग्निहोत्र (उसके रहस्य को समझकर करता है उसको बड़ी स्तुति की प्राप्ति हो जाती है।

4.3.12 प्रात: व सायंकालीन अग्नि उपास्थापन विधान

प्रात: एवं सायं काल में अग्निहोत्र की विधियाँ एक सी हैं; केवल विस्तार में कुछ भेद है। अध्याय 3 - ब्राह्मण 4 में इस सन्दर्भ का प्रतिपाद्य इस प्रकार है-

अग्नि प्रजापति है। इसलिए जब अग्निहोत्र किया जाता है तो वह (अग्नि) जिस पर शासन करता है या जो उसके अनुकूल होता है उसके वीर्य का वह सिंचन करता है। (अग्नियों के) सेवन करनेवाला उस अग्नि का इन सब बातों में अनुकरण करता है और सन्तानोत्पत्ति करता है। वह 'उप' वाले मन्त्र से प्रार्थना करता है। 'उप' का अर्थ है पृथिवी, और यह दो प्रकार से जो कुछ इस संसार में उत्पन्न होता है वह इस पृथिवी पर उत्पन्न होता है ('उप' + जायते); और जो नष्ट होता है वह यहीं दबाया जाता है ('उप' + उप्पते)। इसलिए यहां रात-दिन आधिक्य होता रहता है (अर्थात् पृथिवी पर जो उत्पन्न हुआ वह भी आधिक्य है और जो उसमें गाड़ दिया गया वह भी आधिक्य हुआ)। इसलिए वह ('उप' वाले मन्त्र से आरम्भ करके) आधिक्य से आरम्भ करता है।

अब वह कहता है, "उप प्रयन्तोऽअध्वरम्" अर्थात् "मैं अध्वर में (पर) जाऊँ।" 'अध्वर' नाम है यज्ञ का। इसलिए "मैं यज्ञ में (पर) जाऊँ" ऐसा अर्थ हुआ। अब कहता है, "मन्त्र वोचेमाग्नये।" "अग्नि के लिए मन्त्र बोले।" क्योंकि वह मन्त्र बोलने ही को है। अब कहता है, "आरेऽअस्मे च शृण्वते।" "उसके लिए जो हमको दूर से सुनता है" अर्थात् 'यद्यपि तू हमसे दूर है तो भी तू इस प्रार्थना को सुन, और हमारा भला चीत'।

अब इन्द्र और अग्निवाला मन्त्र- "उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवष्याऽउभा राधसः सह मादयध्यं। उभा दाताराविषा रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्" (यजु0 3।13) - इन्द्र और अग्नि, मैं तुम दोनों को बुलाता हूँ। मैं तुम दोनों को प्रीति की हवि से प्रसन्न करूँगा। तुम दोनों बल और धन के दाता हो। तुम दोनों को अन्न की प्राप्ति के लिए बुलाता हूँ।" इन्द्र सूर्य का नाम है। जब वह अस्त हो जाता है तो आहवनीय अग्नि में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए प्रार्थी उन दोनों मिले हुओं से प्रार्थना करता है कि ये दोनों मिलकर मुझको देंगे। इसीलिए इन्द्र और अग्निवाला मन्त्र पढ़ता है।

अब पढ़ता है, "अयं ते योनिऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः। तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्धया रयिम्" (यजु0 3114) यह तेरी ऋतु के अनुकूल योनि है जहाँ से उत्पन्न होकर तू चमकता है। है अग्नि! इस बात को जानकर उठ और हमारा धन बढ़ा।" 'रवि' का अर्थ है पुष्टि। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि 'तू हमारी बढ़ोतरी कर।'

अब कहता है, "अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽमध्य रेष्वीड्यः। यमप्नवानो भुगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशंविशे" (यजु0 3/15) - "विधाताओं द्वारा प्रथम यह यहाँ बनाया गया, सर्वश्रेष्ठ होता और यज्ञ में पूजा के योग्य, जिसको अप्नवान और मृगु ने प्रज्वलित किया, वनों में विचित्रता से चमकते हुए और घर-घर में फैलते हुए।"

अब कहता है, "अस्य प्रत्नामनु त शुक्रं दुदुहे अह्नयः। पयः सहस्रसामृषिम्" (यजुर्वेद 3/16) - "(अह्नयः) न शरमानेवाले लोगों ने (अस्य) इस अग्नि के (प्रत्नाम्) सन्तान (युत) प्रकाशयुक्त (शुक्र) शुद्ध (पयः) दूध को (सहस्रसाम् + ऋषिम्) हजारों देनेवाले ऋषि से (दुदुहे) दुहा।" 'सहस्रसा' का अर्थ है परम दान देनेवाला। इसी की प्राप्ति के लिए वह कहता है 'सहस्रसाम् ऋषिम्।'

ये छः ऋचाओं के मन्त्र हैं। पहला मन्त्र तीन बार जपता है और अन्तिम तीन बार। क्योंकि यज्ञ तीन आरम्भ और तीन अन्तवाले होते हैं, इसलिए तीन बार प्रथम मन्त्र जपता है और तीन बार अन्तिम। अग्निहोत्र करने में जो कुछ भूल वाणी या कर्म से करता है उससे वह आत्मा आयु, वर्चस् और प्रजा को हानि पहुँचाता है।

इसलिए कहता है, "तनुपासितव मे पाह्यावा देहि वर्षोदाअग्नेऽसि वर्षो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽ0नं तन्म आपूण" (यजु0 3।17) - "हे अग्नि! तू शरीरों का रक्षक है, मेरे शरीर की रक्षा कर। हे अग्नि! तू आयु को देनेवाला है, मुझे आयु दे। हे अग्नि!! तू वर्चस् को देनेवाला है, मुझे वर्चस् दे। हे अग्नि! जो मेरे शरीर में कमी है उसको मेरे लिए पूरा कर"।

अब कहता है, "इन्धानास्त्वा शत" हिमा घुमन्त" समिधीमहि" (यजु0 3।18) - "प्रज्वलित हम सौ वर्षों तक तुझ जलते हुए के ऊपर समिधा रखते हैं।" इससे तात्पर्य है कि हम सो वर्ष जीते रहें, और 'जलते हुए तुझ पर समिधा रक्खें' का अर्थ है कि 'हे महान्! हम तुझको प्रज्वलित करते हैं।' अब कहता है-"वयस्वन्तो वयस्कृत" सहस्वन्तः सहस्कृतम्" (यजु03।18) - "अन्नवाले हम तुझ अन्न देनेवाले को, बलवान् हम बल देनेवाले तुझको।" इसका अर्थ है कि 'हम अन्नवाले हों, तू अन्त देनेवाला हो। हम बलवाले हों, तू बल देनेवाला हो।'

तीन बार इस मन्त्रांश को जपे - "चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय" (यजु0 3।18) - "हे चित्रनाली, हम भलीभांति तेरे पार को पा जायें।" 'चित्रावसु' रात है, क्योंकि यह चित्रों को इकट्ठा करके रहती है। इसीलिए (रात में) दूर से चित्र स्पष्ट नहीं दीखता। अब बैठे-बैठे यह जपता है "सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागयाः" (यजु0 3।16) - "हे अग्नि, तू सूर्य के वर्चस् (प्रकाश) को प्राप्त हो गया।" यह वह कहता है क्योंकि डूबता हुआ सूर्य आहवनीय में घुस जाता है, इसीलिये कहा। अब कहा "समृषीणा स्तुतेन।" (यजु03।19) "ऋषियों की स्तुति से।" चूंकि वह खड़े होकर स्वयं प्रार्थना करता है इसलिए ऐसा कहता है- "सं प्रियेण घाम्ना" (यजु0 3।16) - "प्रिय घर के द्वारा।" आहुतियाँ इसका प्रियधाम हैं। इसलिए 'घाम के द्वारा' का अर्थ है आहुतियों के द्वारा। अब कहा - "समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया स रायस्पोषेण रिमषीय" (यजु0 3।16) - "मैं आयु, वर्चस्, सन्तान और धन की प्राप्ति करूँ।" इसका तात्पर्य यह है कि 'जैसे तूने ये चीजें प्राप्त की, वैसे मैं भी आयु, वर्चस्, सन्तान और धन अर्थात् समृद्धि को प्राप्त हो जाऊँ।

अब गार्हपत्य में जाता है और उसकी अर्चना करता है इस मन्त्र से "उप त्वाग्ने दिवे- दिवे दोषावस्तधिया वयम्। नमो भरन्तऽएमसिं" (यजु0 3।22) - "हे अग्नि! दिन-प्रतिदिन नमस्कार करते हुए हम रात को प्रकाशित करनेवाले तुझको बुद्धि से प्राप्त होते हैं। वह इसलिए इसकी अर्चना करता है कि कहीं वह उसको हानि न पहुँचा दे।

अब कहता है, "राजन्तमध्यराणां गोपामृतस्य दीदिवम् वर्धमान स्वे दमे" (यजु0 3।23) - 'यज्ञों के प्रकाशित करनेवाले, ऋत के चमकानेवाले रक्षक, अपने घर में बढ़ने वाले तुझको।" इसका तात्पर्य है कि यह मेरा घर तेरा ही घर है। इसको हमारे लिए समृद्धि-शील कर। अब कहा, "स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये" (यजु0 3।24) "हे अग्नि, तू हमारे लिए उसी प्रकार सुलभ हो जैसे पिता पुत्र को और हमारी स्वस्ति कर।"

इसका तात्पर्य है कि जैसे पिता पुत्र के लिए सुलभ होता है और किसी प्रकार उसको हानि नहीं पहुँचाता, इसी प्रकार तू भी हमारे लिए सुलभ हो, किसी प्रकार हानि न पहुँचा। अब इन्द्र की स्तुति है। इन्द्र ही यज्ञ का देवता है। इसलिए इन्द्र से ही अग्नि के उपस्थान को सम्बद्ध करता है, "कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे" (यजु03।34) - "हे इन्द्र! तू कभी रिक्त (इंततमद) नहीं, और कभी अपने सेवक को विफल नहीं करता।" 'दाशुषे' का तात्पर्य है यजमान 'तू यजमान से कभी द्रोह नहीं करता' इस मन्त्र के पढ़ने से यही तात्पर्य है। अब कहता है, "उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पुच्यते" (यजु0 3।34) - "हे मघवन् तुझ देव का दान अधिक ही होता जाता है।" इसका तात्पर्य यह है कि हमको यहाँ अधिक पुष्ट कर।

अब सावित्री का जाप है। सविता देवों का प्रेरक है। सविता की प्रेरणा से ही सब काम सफल होते हैं। इसलिए कहा "तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" (यजु0 3।35)। अब अग्नि के लिए एक मन्त्र है। अपने को अन्त में रक्षार्थ अग्नि के ही समर्पण करता है, "परि ते दूडभो रथोऽस्मपे अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः" (यजु0 3।36) - "तेरा अवध्य रथ हमको चारों ओर से ढक ले जिससे तू पूजकों की रक्षा करता है।"

4.4 पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार अग्निहोत्र

अब हम पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार अग्निहोत्र को समझेंगे। विधान यह है कि पति-पत्नि नित्य प्रात:-सायं अग्निहोत्र करते हैं। पत्नी के साथ नित्य किये जाने वाले अग्निहोत्र यज्ञ में प्रयुक्त अग्नि वही अग्नि होती थी जिसको साक्षी मानकर प्राचीन काल में विवाह सम्पन्न होते थे। जिस प्रकार वधु दाम्पत्य में वर के साथ-साथ रहती है, उसी प्रकार इस अग्नि को भी घर में स्थापित किया जाता था। वैदिक संस्कृत में घर का एक पर्यायवाची 'अवसथ' है। इसी कारण घर लाई गई इस अग्नि को आवसथ्य अग्नि भी कहते हैं। यह अग्न्याधान दो प्रकार से किया जाता था- स्मार्त अग्न्याधान एवं स्रौत अग्न्याधान।

स्मार्त अग्न्याधान एक गृहस्थ द्वारा सम्पन्न किया जाता है। विवाह के समय जिस अग्नि को साक्षी मानकर वर वधू का वरण करता है उसी अग्नि को वधू के साथ अपने घर में लाकर उसका विधिपूर्वक स्थापन करना ही स्मार्त अग्न्याधान कहलाता है। अर्थात् विवाह के समय लाई गयी अग्नि में वर-वधू एक साथ जो हवन करते हैं, उसे ही अग्निहोत्र कहते हैं।

स्मार्त अग्नाधान मानव कब-कब कर सकता है एवं इस निमित्त अग्नि कहाँ से प्राप्त कर सकता है इस विषय में विद्वानों के मत कुछ इस प्रकार हैं। "आवसथ्याधानम् द्वारकाले।" अर्थात् अवसथ अग्नि का आधान विवाह के समय करना चाहिए। यदि विवाह के समय किन्हीं कारणों से अग्नि को स्थापित न किया जा सके तो जब भाइयों के मध्य पैतृक सम्पत्ति का बटवारा हो रहा हो तब भी इस अग्नि का आधान किया जा सकता है- "दायध्यकाले एकेषां"। ऐसी स्थिति में क्षेत्र के सम्पन्नतम वैश्य के घर से अग्नि को लाकर घर में स्थापित किए जाने का विधान प्राप्त होता है। "वैश्यस्यबहुपशून गृहात् अग्निमाहृत्य"- अर्थात् ऐसा वैश्य जिसके घर बहुत सारे पशु (गौएं और बैल) हों उसके घर से अग्नि को लाना चाहिए। इस अग्नि के प्राप्ति की एक और विधि विद्वानों द्वारा बताई गयी है- "अरणीप्रधानमेके"। अर्थात् अरणि मंथन द्वारा अग्नि उत्पन्न करके भी अग्नि का आधान और स्थापन किया जा सकता है।

स्रौताग्नि आधान के विषय में उल्लेख आता है कि- "जातपुत्रः कृष्णकेशः अग्निम् आदधीत।" अर्थात् जब व्यक्ति को पुत्ररत्न की प्राप्ति हो, व्यक्ति के केश (बाल) अभी काले हों अर्थात् वह अभी प्रौढ़ावस्था का प्राप्त न हुआ हो तब अग्न्याधान करना चाहिए।

प्रौढ़ावस्था में जो स्रौत अग्न्याधान किया जाता है उसकी प्रक्रिया कुछ लम्बी है। इसमें अग्नि और उनके कुण्डों की संख्या तीन हो जाती है- (1) गार्हपत्य, (2) आहवनीय और (3) दाक्षिणाग्नि। स्मार्त अग्न्याधान के बाद आवसथ्य (गार्हपत्य) अग्नि और उसका कुण्ड तो पूर्व से ही घर की यज्ञशाला में स्थापित होता था किन्तु स्रौत अग्न्याधान के बाद आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि अग्नि और उनके कुण्ड भी बढ़ जाते हैं। इस समय जिस मुख्य अग्नि का आधान किया जाता है वह अग्नि आवसथ्य अग्नि में स्थापित रहती है।

4.5 अग्निहोत्र का वैशिष्ट्य

अग्निहोत्र सम्बन्धी इस अध्ययन में हमें ज्ञात होता है कि, वैदिक संस्कृति ही एक ऐसी संस्कृति है जिसमें मनुष्य अपने घर का स्वामी स्वयं को नहीं मानता है और एक प्रकृतिक शक्ति (अग्नि देव) को गृहपति के रूप में स्वीकार करता है। स्मार्त अग्न्याधान में अग्नि के इसी महत्त्व का उद्घाटन किया गया है। मानव अग्नि को साक्षी मानकर दाम्पत्य जीवन का आरम्भ करता है और अपनी पत्नी के साथ लाई गई उसी अग्नि को आजीवन अपने घर में स्थापित कर यज्ञादि का सम्पादन करता है। सभी देवताओं में अग्नि ही मनुष्य के निकटतम देवता है और इसीलिए मनुष्य के दैनिक जीवन में सर्वाधिक उपयोगी भी है। अग्नि के बिना संसार-व्यवहार की कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। अग्नि न केवल बाह्य जगत् में व्याप्त है बल्कि साक्षात् रूप में मानव शरीर में भी अग्नि का संचार है। हमारे खाद्य को अग्नि (जठराग्नि) ही पचाने का काम करता है, इसी अग्नि से रक्त का संचार होता है। हम जानते हैं कि बिना ऊर्जा के गति सम्भव नहीं है। शरीर में अवस्थित अग्नि ही ऊर्जा रूप में हृदय-स्पन्दन और रक्त संचार का कारण है। इस अग्नि के बुझ जाने पर मनुष्य को मृत मान लिया जाता है।

4.5.1 अग्निहोत्र का धार्मिक आशय

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता (3/14) में कहा है-

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।"

भूत मात्र अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न पर्जन्य (वृष्टि) से होता है, पर्जन्य यज्ञ से होता है, यज्ञ कर्म से होता है। कर्म विधि के ज्ञान से होता है और ज्ञान अक्षय परमात्मा से उत्पन्न होता है, इसलिए सर्वव्यापक परमात्मा यज्ञ में सदा रहता है इसमें भगवान् ने सात पगों में यज्ञ रूप परमेश्वर से सृष्टि का जन्म और पालन दर्शाया है। मूल से प्रारम्भ करें तो नित्य यज्ञ रूप ब्रह्म उससे ज्ञान रूप ब्रह्म, उस विधि के ज्ञान से कर्म, कर्म से यज्ञ (मनुष्यों द्वारा अग्निहोत्र आदि क्रिया) यज्ञ से पर्जन्य वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से जीव सृष्टि का पालन। प्रश्न उपनिषद् ने कहा-'अन्नं वै प्रजापतिः।।' 1/14 तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है-'अन्नं ब्रह्म' मैत्रेय उपनिषद् में कहा गया है प्राणो वा अन्नस्य रसः। अर्थात् प्राण ही अन्न का रस है।

यही बात शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार से कही गयी है- यदि यजमान की इच्छा हो कि वृष्टि होनी चाहिए तो वह प्रजभ्येष्टि यज्ञ करे। यजमान कहे कि वृष्टि की इच्छा है अतः अध्वर्यु वायु और बिजली का ध्यान करे। अग्निन, अभ्र (मेघों) का ध्यान करे, होता मेघ गर्जना और वृष्टि का ध्यान करें, और ब्रह्मा इन सबका ध्यान करे। ऐसे ज्ञानी ऋत्विज जहां होते हैं और यदि मन से ऐसा ध्यान करते हैं और ऐसा यज्ञ करते हैं तो उनके पवित्र संकल्प से वहां अवश्य वृष्टि होगी।

सरल एवं व्यावहारिक शब्दों में कहें तो मनुष्य के सबसे नजदीक और उपयोगी अग्नि है। मनुष्य का जीवन और उसका अस्तित्व अग्नि के ही कारण है। इसीलिए वैदिक संस्कृति में अग्निपूजा विशेष महत्त्व रखती है। आप जानते हैं कि ऋक् संहिता के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का देवता अग्नि ही है। कमाबेश अग्नि का यही महत्त्व वैदिक संस्कृति के निकटस्थ संस्कृति पारसी संस्कृति में भी है और इसी कारण पारसी लोग भी अग्नि की पूजा प्रधान रूप से करते हैं।

4.5.2 अग्निहोत्र का वैज्ञानिक आशय

आप जानते हैं कि ताप से किसी वस्तु के आयतन में विस्तार होता है। जिस प्रकार अग्नि में डाला हुआ कटु पदार्थ (मिर्च) वायुमण्डल में फैलकर सबको प्रभावित करता है उसी प्रकार अग्नि में डाली हुई सामग्री छोटे परमाणुओं में टूट कर वायुमण्डल में व्याप्त हो जाते हैं। अग्नि में डाला हुआ घी परमाणुओं के रूप में सारे घर में फैल जाता है। प्राणाम् अर्थभोजनम् अर्थात् केवल सूचना मात्र भी आधा भोजन है। अग्निहोत्र सिद्ध करता है घ्राणाम् सूक्ष्म श्रेष्ठ भोजन आग में डालने से घी एवं औषधियों के सूक्ष्म परमाणु बन जाते हैं। आग द्वारा वायु गर्म और हलकी हो जाती है। उस हलकी गर्म वायु द्वारा वे सूक्ष्म परमाणु ऊपर उठते हुए सूर्यलोक में चले जाते हैं।

अग्नि जब पदार्थों को सूक्ष्म परमाणुओं में विभक्त कर देती है तो वे सूक्ष्म परमाणु सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थान तक पहुंचकर अपना प्रभाव दिखाकर अपना प्रभाव डालती है। यज्ञ के धूम के द्वारा औषधियों के सूक्ष्म परमाणु अनायास ही मकान के छोटे- छोटे छिद्रों में घुसकर उन्हें रोगाणु मुक्त कर देते हैं। मानवों के श्वास द्वारा शरीर में प्रवेश कर अपना प्रभाव दिखाकर उन्हें भी स्वस्थ बनाता है।अग्निहोत्र में डाली हुई औषधियों का प्रभाव एवं औषधि का गुण भी बढ़ जाता है।

प्रज्ज्वलित यज्ञकुण्ड से घी के सूक्ष्मतम परमाणु ऊपर उठते हैं तथा बादलों में जो बहुत सूक्ष्म जल के कण तैरते रहते हैं उन कणों को मिलाकर बड़ी जल की बूंद बनाने में सहायक होते हैं। इसे मेघों का जल बीजीकरण (Seedling of cloud) कहा जाता है।

आयुर्वेद में भस्मों का रस रसायन माना जाता है। लोहा, अभ्रक, मुक्ता, सोना, चांदी आदि सीधा खाने से मनुष्य मर जाएगा। किन्तु अग्नि के माध्यम से उन्हें भस्म कर उन्हें जीवनप्रद रसायन बना लिया जाता है। सौ बार अग्नि में डालने से भस्म शतपुटी और हजार बार डालने से सहस्रपुटी बन जाती है। आयुर्वेद का धातु भस्म निर्माण एक प्रकार से अग्निहोत्र ही है। केवल मंत्रोच्चारण भर नहीं किया जाता है। अग्निहोत्र में मंत्रोच्चारण आध्यात्मिक मनोवैज्ञानिक भाग है और अग्नि में औषधियों का डालना भौतिक विज्ञान का भाग है। अग्न्होत्र के वैज्ञानिक महत्त्व को समझने हेतु जर्नल ऑफ एक्यूपंचर एण्ड मेरीडियन स्टडीज, 2016 में रहुल रवीन्द्र नायर का लेख अति महत्त्वपूर्ण है।

यज्ञ से वृष्टि भारत की एक प्राचीन परम्परा है। इसका वैज्ञानिक विवेचन आज के वैज्ञानिक युग में अनिवार्य हो गया है। वैदिक ऋषियों ने यज्ञधूम द्वारा वृष्टि की जो व्याख्या की है वह भी विचारणीय है। उसमें भी विज्ञान छिपा हुआ है। अथर्ववेद में कहा है-जब यह प्राण अपनी महती गर्जना द्वारा अपना संदेश औषधियों से कहता है उसी समय वे गर्भधारण करती हैं और बहुत बढ़ती हैं। जब योग ऋतु आती है तब पृथ्वी के सब पदार्थ आनन्दित होते हैं। जब प्राण अपने वृष्टि रूप में इस विस्तृत भूमि पर गिरता है तब पशु आनन्दित होते हैं। वे कहते हैं हमारी शक्ति बढ़ेगी और हमारा अन्न बढ़ेगा। ये औषधियां कहती हैं-प्राण! तुमने हमारी आयु बढ़ा दी और सुगंधित कर दिया। इस प्रकार वनस्पतियों को प्राण प्राप्त होता है। इस प्रकार वृष्टि से ही अन्न प्राणी मात्र को प्राप्त होता है।

4.5.3 अग्निहोत्र का नैतिक एवं सामाजिक आशय

सृष्टि यज्ञ को रूपक के द्वारा बोधगम्य किया गया है। यहाँ यज्ञ का मानवीकरण किया गया है। शतपथ ने यज्ञ-मीमांसा का प्रारम्भ हविर्यागों से किया है। अग्निहोत्र इसका आधार है। यज्ञ के लिये परिवार संस्था और धर्मपत्नी का होना अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्ध रथ के पहिए की भांति अन्योन्याश्रित रूप से परिभाषित होते हैं। शतपथ की दृष्टि में एक यह भी महत्त्वपूर्ण सामाजिक एवं नैतिक पक्ष है कि वह यज्ञ में हिंसा की चर्चा भी नहीं करता।

अग्निहोत्र यज्ञ के महत्त्व प्रतिपादन को समझने हेतु प्रो. डूमाण्ड कृत 'ल अग्निहोत्र' (जर्मन भाषा में) तथा हिलेब्राण्ड की पुस्तक सहायक होंगी।

4.6 सारांश

प्रातः सायं अनि में दूध की आहुति प्रक्षिप्त कर किया जाने वाला यज्ञ अग्निहोत्र है। इसमें गौण रूप में, तंडुल, दधि या घृत की आहुति का भी विकल्प है। इस यज्ञ को प्रातः सूर्योदय से पूर्व तथा सायंकाल सूर्यास्त के बाद सम्पन्न किया जाता है।' अग्निहोत्र करने वाले के घर सब देवता पहुँच जाते हैं। सूर्यास्त होने पर दी गई आहुतियाँ इन सभी प्रवेश किए हुए देवताओं को मिल जाती हैं तथा सूर्योदय से पूर्व आहुति देने का प्रयोजन यह है कि देवों को निर्गमन से पूर्व आहुति दे दी जाए। शतपथ में सूर्य को ही अग्निहोत्र कहा गया है। "क्योंकि यह सूर्य के उदय एवं अस्त के सन्ध्याकाल में सम्पन्न किया जाता है। अग्निहोत्री को मृत्यु के पश्चात् भी अनिष्ट नहीं करता अपितु माता-पिता के समान इसे नवीन जन्म दे देता है। प्रजापति ने आहुतियाँ देकर स्वयं को पुनः उत्पन्न कर लिया अतः अग्निहोत्री प्रजारूप में अपने को उत्पन्न करता है।" विजयलाभ, स्वर्गलोक-प्राप्ति एवं प्रजोत्पत्ति अग्निहोत्र के प्रयोजन है किन्तु प्रजोत्पत्ति का ही इस यज्ञ से विशेष सम्बन्ध है। मैत्रायणी संहिता में भी उल्लेख है कि प्रजापति ने अग्निहोत्र द्वारा सात ग्राम्य पशु व छः ऋतुएँ उत्पन्न कीं। शतपथ में आरुणि का कथन है कि अनिहोत्र गौ यह आकाश है; वत्स पवन है; अग्निहोत्र खाली धरती है; जो यह जानता है वह नष्ट नहीं होता।" याज्ञवल्क्य इसे पाक-यज्ञ (गृह्य यज्ञ) के समान मानते हैं।" अन्य सब यज्ञ रुक जाते हैं लेकिन निहोत्र बन्द नहीं होता। अग्निहोत्र के अनुष्ठान से प्राणी अपने सभी पापों से छूट जाता है। यह यज्ञ यजमान को स्वर्ग ले जाने वाली नाव के सदृश है। अग्निहोत्र प्रकृति यज्ञ होने के कारण अन्य यज्ञों की कल्पना का मूल उद्गम है।

इस इकाई के अध्ययन से हम जान पाए हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में प्रथम अग्निहोत्र यज्ञ प्रजापति ने किया था और उसी यज्ञ का आवर्तन मनुष्य अपने जीवन में करता चला आ रहा है। यज्ञ में द्रव्य, देवता एवं त्याग तीन मुख्य वस्तुएँ हैं। अग्निहोत्र यज्ञ में अग्नि देवता को विशेषरूप से स्थापित करके प्रतिदिन होम किया जाता है। होम को इस प्रकार समझते हैं- किसी देवता के लिए अग्नि में द्रव्य की आहुति। अग्निहोत्र में अग्नि ही मुख्य देवता है। अग्निहोत्र यज्ञ में यज्ञकर्त्ता, उसकी पत्नी, अध्वर्यु और गौ-दोग्धा सम्मिलित होते हैं।

4.7 शब्दावली

अन्नाद्य = सोम अन्न है तथा अग्नि अन्नाद्य। अग्निरूपी अन्नाद्य सोमरूपी अन्न की आहुति ग्रहण करता है। यही क्रिया जगत् में सतत विद्यमान है।

याग = याग का तात्पर्य है- देवता के लिए द्रव्य का त्याग।

आंखुपारिख = चूहे के बिल की मिट्टी।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न क्र. 1 - 1. ख, 2. घ, 3. ख, 4. ग, 5. क, 6. क, 7. क, 8. ग

अभ्यास प्रश्न क्र. 2 - 1. ख, 2. ग, 3. ग, 4. ग, 5. ख, 6. घ, 7. ग, 8. घ

अभ्यास प्रश्न क्र. 3 - 1. ग, 2. ख, 3. ग, 4. क, 5. ग, 6. क, 7. घ, 8. क

अभ्यास प्रश्न क्र. 4 - 1. ग, 2. ख, 3. ग, 4. क, 5. ग, 6. क, 7. घ, 8. क

अभ्यास प्रश्न क्र. 5 - 1. ग, 2. ख, 3. ग, 4. क, 5. ग, 6. क, 7. घ, 8. क

4.9 सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. शतपथ ब्राह्मण (विज्ञान-भाष्य) पं० मोतीलाल शर्मा, राजस्थान वैदिक तत्व शोध संस्थान, मानवाश्रम, जयपुर
2. वेबर द्वारा सम्पादित पुनर्मुद्रण चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
3. संस्कृत वाङ्मय का वृहद इतिहास, प्रथम खण्ड, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1996
4. सायण-भाष्य (वेदार्थप्रकाश) तथा हरिस्वामी की टीका सहित सम्पूर्ण माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1940
5. शतपथ ब्राह्मण (हिन्दी अनुवाद), पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन-अनुसन्धान संस्थान, दिल्ली, 1967

4.10 बोध प्रश्न

1. गार्हस्थ जीवन में अग्निहोत्र यज्ञ के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. शतपथ ब्राह्मण में वर्णित अग्निहोत्र वैदिक संस्कृति के पारिवारिक दिनचर्या की पूर्वपीठिका है, सिद्ध करें।
3. अग्निहोत्र यज्ञ विधि का सविस्तार वर्णन कीजिए।
4. मानव जीवन में अग्नि के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
5. अग्निहोत्र यज्ञ के अग्न्याधान से आप क्या समझते हैं?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY